"सफल-जीवन-माला"—२

श्री रामकृष्ण परमहंस

—केदारनाथ भट्ट

"जीवन सफल 'सूर' ताही को काज पराये आवत"

श्री रामकृष्ण परमहंस

का

जीवन-चरित्र

संपादक—

केदारनाथ भट्ट

प्रकाशक—

लक्ष्मीनारायण अग्रवाल

आगरा

प्रथमबार]

[मूल्य

प्रकाशक—
लक्ष्मीनारायन अग्रवाल
बुकसेलर, आगरा

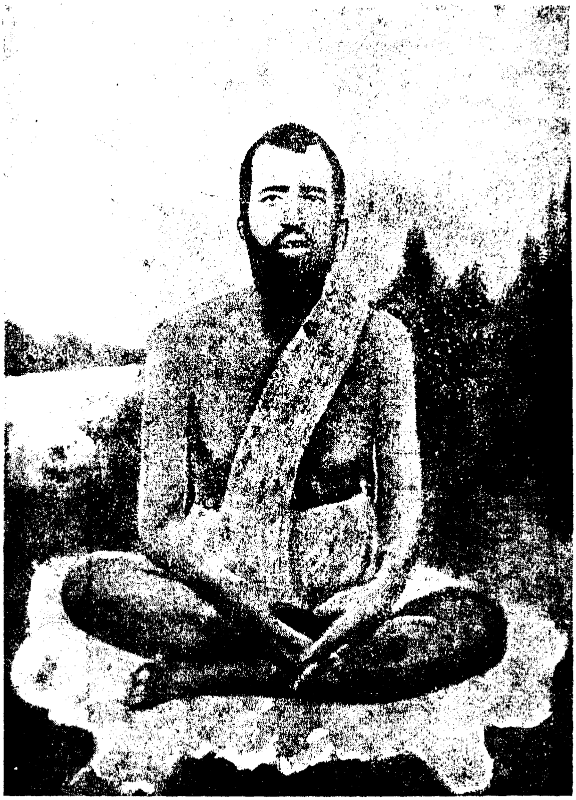
मुद्रक—
राधारमन अग्रवाल
मोडर्न प्रेस, नमकमंडी
आगरा

निवेदन

हिन्दी में अभी तक जीवन-चरित्रों की कमी चली ही आती है। इधर देश में बढ़ती हुई जागृति के कारण सभी लोग अपने यहाँ के महान् पुरुषों के बारे नाम-मात्र से अधिक हाल जानना चाहते हैं। इसी इच्छा को पूरी करने के लिये यह 'सफल-जीवन' ग्रन्थ-माला निकाली जा रही है। इसमें चरित-नायकों के जीवन की मुख्य-मुख्य घटनाओं के साथ उन सब बातों का समावेश भी कर दिया गया है, जिनसे पाठकों को बहुत से उपदेश मिल सकेंगे।

भाषा और छपाई का ढङ्ग ऐसा रखा गया है कि जिससे केवल साधारण अक्षर-ज्ञान रखनेवाले पाठक भी आसानी से पढ़ और समझ सकें।

सम्पादक।



श्री रामकृष्ण परमहंस

श्री रामकृष्ण परमहंस का जीवन-चरित्र

जन्म और वंश-परिचय

बंगाल के प्रसिद्ध योगी भक्तराज श्री रामकृष्ण परमहंस का जन्म सन् १८३३ में फरवरी मास की २० तारीख़ को हुआ था। इनके पिता का नाम श्री खुदीराम चट्टोपाध्याय था। ये हुगली ज़िला में कामारपूकूर नामक गाँव के रहनेवाले थे। सुनते हैं कि श्रीरामकृष्णजी के पिता श्री खुदीराम चट्टोपाध्याय एक बड़े धर्मात्मा पुरुष थे तथा इनकी माता भी बहुत ही धार्मिक थीं। उन्हें भूखे आदमी को भोजन दिए बिना चैन नहीं पड़ता था। श्री खुदीराम और इनकी धर्म्मपत्नी (रामकृष्णजी की माता) दोनों ही इतने दयालु स्वभाव के थे कि इनके घर से कोई भिखारी खाली नहीं लौटता था कुछ न कुछ अवश्य पाता था। ऐसे धार्मिक सज्जनों पर परमेश्वर

की विशेष कृपा हुआ ही करती है। उसी कृपा के कारण श्री खुदीरामजी के योग्य सन्तान का ठाठ था। इनके तीन पुत्र थे। सबसे बड़े का नाम रामकुमार और बिचले का नाम रामेश्वर था, इन दोनों से छोटे हमारे चरित-नायक थे।

श्री रामकृष्णजी के जन्म के सम्बन्ध में एक अद्भुत बात प्रचलित है। कहते हैं कि इनके पिता श्री खुदीराम चट्टोपाध्याय एक समय गया यात्रा को गए थे। गयाजी में उन्होंने एक अद्भुत स्वप्न देखा। इस स्वप्न में उन्हें कोई शंख, चक्र, गदा, पद्म धारण किये हुए चार भुजाओं-वाला पुरुष दिखाई दिया। इस चतुर्भुज पुरुष ने स्वप्न में कहा—'देखो, मैं तुन्हारे यहाँ पुत्र बनकर जन्म ले रहा हूँ' इतना सुनते ही चट्टोपाध्याय महाशय की आँखें खुल गईं और ये अपने मन में कई प्रकार के सोच विचार करने लगे। इधर उनके गयाजी से आने के एक दिन पहिले उनकी धर्म्मपत्नी अपनी दो पड़ोसिन औरतों के साथ एक तालाब के पास खड़ी हुई थीं। इस तालाब के पास एक शिव का मन्दिर था। उस शिव मन्दिर की ओर से एक पवन का झोंका आकर श्री खुदीराम चट्टो-पाध्याय की धर्मपत्नी के मध्यभाग से टकराया। चट्टो-पाध्याय महाशय की धर्म्मपत्नी ने उसी समय यह बात

अपनी सहेलियों से कह दी। इस घटना के कुछ समय पश्चात् गर्भ के लक्षण दिखाई देने लगे। चट्टोपाध्यायजी की स्त्री यह बात बार-बार कहा करती थीं 'कि मुझको अनेक प्रकार के देवता दिखाई देते हैं' यह बात सुनकर लोग उनकी हंसी उड़ाने लगते थे और कभी-कभी उन्हें पागल भी बतला दिया करते थे। वास्तव में ऐसा होता भी है। जब कोई महापुरुष गर्भवती स्त्री के उदर में आता है तो वह उसके प्रताप और तेज़ से बहुत व्याकुल रहा करती है और उसकी दशा पागलों जैसी ही हो जाती है। जिन्होंने बंगाल के एक अन्य महापुरुष पंडित ईश्वर-चन्द्र विद्यासागर का जन्म वृत्तांत पढ़ा होगा उनको मालूम होगा, कि जब महात्मा ईश्वरचन्द्र अपनी माता के गर्भ में थे तब वह बिल्कुल पागल हो गईं थीं, घर वालों को इससे बड़ी चिन्ता हो गई थी। शक्ति के अनु-सार सब प्रकार की चिकित्सायें भी करवाई गईं पर कुछ फल न हुआ। प्रायः सब लोगों को निराशा हो गई थी। अन्त में एक ज्योतिषी को इनका जन्म-पत्र दिख-लाना निश्चय किया। पहले ज़माने के मनुष्यों को ज्यो-तिष विद्या पर अच्छा विश्वास था। जब कोई ऐसी कठिन समस्या आकर पड़ती थी, तभी पुराने लोग किसी ज्योतिषी की ओर अपनी जन्म-पत्री लेकर भागते थे।

वास्तव में पुराने समय में ज्योतिष शास्त्र के पण्डित भी अच्छे-अच्छे मिला करते थे। विशेषतः ब्राह्मण लोग इस विद्या को यथार्थ रूप में पढ़ना अपना स्वाभाविक धर्म्म समझा करते थे। इसी कारण पुराने श्रद्धालु पुरुष ब्राह्मणों को त्रिकालदर्शी की पदवी भी दे दिया करते थे। अस्तु, पं० ईश्वरचन्द्रजी के बाबा पं० रामजय तर्कभूषण ने अपनी पुत्र-वधू की जन्म-पत्री एक योग्य ज्योतिषी को दिखलाई। ज्योतिषीजी ने जन्म-पत्री देखकर यही कहा कि 'तुम किसी प्रकार की चिन्ता मत करो, बहू के गर्भ में कोई प्रतापी बालक आया है इसीलिए उसके तेज से घबड़ाकर यह पागल मालूम होती है। बालक के गर्भ से निकलने पर यह बिल्कुल स्वस्थ हो जायगी'। ज्योतिषीजी का यह वचन सुनकर कुछ सन्तोष हुआ। परमेश्वर की दया से प्रतापी बालक ईश्वरचन्द्र के गर्भ से बाहर आने पर उनकी माता का सारा उन्माद (पागलपन) जाता रहा और वह ज्यों की त्यों होगई। यह देखकर सब लोगों को बड़ा अचरज हुआ, पर रामजय तर्कभूषणजी ने ज्योतिषी का कहना याद किया और बड़े प्रसन्न हुए कि उनका पौत्र एक प्रतापी और यशस्वी मनुष्य होगा। इसी प्रकार हम यहाँ भी सोचते हैं कि गर्भस्थ बालक रामकृष्ण के प्रताप से ही उनको अनेक

प्रकार के देवताओं का दर्शन होता था और वे सबको पगली मालूम देती थीं।

परमहंसजी का जन्म का नाम गदाधर था, इसलिए बड़े लोग प्रायः इनको 'गदा' के नाम से पुकारा करते थे।

एक समय इनके साथ बड़ी रहस्य से भरी घटना हुई थी। यद्यपि आजकल के मनुष्यों को ऐसा विश्वास होने की आशा हमे कम है, पर तब भी पाठकों के मनो-विनोद के लिए हम यह घटना दिये देते हैं। यह ईश्वर जाने इसमें सचाई का अंश कितना है।

जब रामकृष्ण केवल ४—५ वर्ष के थे तब एक दिन इनकी माता इन्हें घर में छोड़कर किसी काम के लिए बाहर आई थीं, जब वे लौटकर घर में गईं तो वहाँ उन्होंने रामकृष्ण को नहीं पाया, किन्तु एक और ही ६-१० वर्ष का सोता हुआ बालक वहाँ दिखाई दिया। यह देखकर रामकृष्ण की माता एक दम घबरा उठीं और चिल्लाती हुई बाहर निकलीं। इनकी चिल्लाहट सुनकर चट्टोपाध्याय जी इनके पास आये और इतने ज़ोर से चिल्लाने का कारण पूछने लगे। रामकृष्ण की माता ने जैसा देखा था वैसा बता दिया। ये सब बातें सुनकर चट्टोपाध्याय महाशय बोले कि जो कुछ होगा वह मुझे

भली भाँति मालूम है, तुम गड़बड़ मत करो। केवल इतनी बात से माता को सन्तोष न हुआ और वह कहने लगीं कि जल्दी कोई प्रबन्ध करो, बालक रामकृष्ण को किसी भूत ने घेर लिया है। इसके जवाब में 'जैसी ईश्वर की मर्जी होगी वैसा होगा' कहते हुए वह वहाँ से बाहर चले गए।

रामकृष्ण की बोली बचपन से ही बहुत मीठी थी। इसी कारण गाँव के सब आदमी इनसे घरवालों से भी अधिक प्रेम रखते थे। प्रारम्भ से ही रामकृष्ण जाति-पांति के झगड़ों में न पड़ कर सब मनुष्यों के हाथ का भोजन बड़े प्रेम से कर लिया करते थे। यह भी एक विशेषता थी कि गाँव के सभी लोग इनको भोजन कराने के लिए बड़े इच्छुक रहते थे। रामकृष्ण के भोजन करने में वे अपना सौभाग्य समझा करते थे।

बालक रामकृष्ण गान-विद्या के बड़े रसिक थे और स्वयं भी बहुत अच्छा गा लेते थे क्योंकि इनकी मीठी वाणी में बहुत अधिक रस था। वे कृष्ण लीला और राम लीला में बड़ा अनुराग रखते थे। कभी-कभी स्वयं कृष्ण बनते और अपने साथियों में से किसी को बलराम बनाते, किसी को श्रीराम बनाते और खूब खेलते। लोग इन-की यह लीला देखकर बड़े प्रसन्न होते थे। देवपूजा में

बचपन से ही रामकृष्ण इतने अनुरक्त थे कि अपने हाथ से पार्थिव मूर्ति बनाकर शिवार्चन किया करते थे और कई बार भक्ति रस में गोता खाकर बेसुध हो जाते थे।

रामकृष्ण का गाँव श्रीजगन्नाथ जी को जाने वाली सड़क के बिल्कुल समीप था। इस गाँव में एक धर्मशाला भी थी जिसमें सदा ही यात्रियों की भीड़ रहती थी। रामकृष्ण भी इस धर्मशाला में पहुँचा करते थे और बड़े प्रेम से यात्री लोगों की सेवा करा करते थे। कभी कभी वे धर्म चर्चा के अभिलाषी यात्रियों से धर्म के सम्बन्ध में वार्तालाप भी खूब किया करते थे। बाल्यावस्था में ही बड़े अच्छे अच्छे उपदेश सुनाया करते थे। एक दिन ये नई धोती पहन कर उसी धर्मशाला में पहुँचे। वहाँ जाकर इन्होंने अपनी नवीन धोती के दो टुकड़े बना लिये। इन टुकड़ों में से इन्होंने एक का कौपीन वस्त्र बना लिया और दूसरे को उपवस्त्र बना लिया और अपने घर चले आये। घर आने पर उपवस्त्र अपने बड़े भाई और माता को सौंप दिया और कहने लगे "देखो मैं अब साधु बन गया हूँ। आज हमने साधुओं के हाथ की बनी हुई रोटी खा ली है। अब मैं घर में कुछ न खाऊँगा।" बचपन में बालक के मन में जो संस्कार बैठ जाते हैं, मनुष्य उन्हीं के अनुसार अपने जीवन में कार्य्य करता है।

सोलह वर्ष की अवस्था में हमारे चरितनायक का उपनयन संस्कार भी विधिपूर्वक हो गया। इनके बड़े भाई कलकत्ते में किसी संस्कृत विद्यालय के अध्यापक थे। इसी विद्यालय में रामकृष्ण को उन्होंने दाखिल करवा दिया। विद्यालय में जाकर रामकृष्ण यह देख कर चकित हुए कि वहाँ पर बड़े-बड़े, विभूति मस्तक में लगाये हुए, त्रिपुण्ड धारण किये हुए, रुद्राक्ष पहने हुए पण्डित लोग व्यर्थ वितण्डाओं में जुटे हुए हैं। कोई ब्रह्म का स्वरूप बतलाता है, कोई माया की व्याख्या करता है, कोई आत्मा और परमात्मा का विवेचन करता है। सब अपने अपने पक्ष पर ज़ोर दे रहे हैं, दूसरे के मतों पर आक्षेप कर रहे हैं। खूब 'फक्किकायें' उड़ रही हैं। एक दूसरे को ज्ञान-शून्य सिद्ध करने में ही वे अपना महत्त्व समझते हैं। कोई बीच-बीच में व्याकरण की अशुद्धियों पर ही लपक पड़ते हैं। इनके इस विवाद को देख कर ज्ञानी मनुष्य भी अज्ञान में फँस जाता है। वेदान्त और अध्यात्म विद्या के असली रहस्य को न कोई समझनेवाला है और न कोई शास्त्र के सिद्धान्तों पर चलनेवाला है। जहाँ देखते हैं वहीं दक्षिणा का प्रश्न है। यह सब लीला देख कर रामकृष्ण को विद्या से बड़ी घृणा हो गई। वे पाठशाला से मुँह मोड़ने लगे। उनके

भाई आदि यदि पाठशाला जाने को कहते, तो कह दिया करते कि 'पाठशाला जाने से कुछ लाभ न होगा, वहाँ धन के लोभी ब्राह्मण लोगों ने अड्डा जमा रक्खा है, मुझे धन नहीं चाहिये, मैं तो परमेश्वर को चाहता हूँ। धन मिलानेवाली विद्या में अपना अमूल्य समय खराब न करके मैं तो परमेश्वर से मिलनेवाली विद्या पढ़ूँगा। यह कह कर रामकृष्ण ने पाठशाला जाना बन्द कर दिया। वास्तव में वे पढ़ना-लिखना सब व्यर्थ समझते थे।

तत्व-बोध

धीरे धीरे अब आप रामकृष्णजी को और ही रूप में देखेंगे। ये संसार के निःस्सार भाव को भली-भाँति समझ गए थे। इनके बड़े भाई राजकुमार चट्टोपाध्याय श्री कालीजी के मन्दिर में पुजारी का काम किया करते थे। उनका छोटा भाई भी कभी कभी उनके साथ मन्दिर में चला जाता था और पूजन भी किया करता था। थोड़े समय के बाद रामकुमार जी बीमार हो गए और बीमारी में इतने शक्तिहीन हो गए कि वे भलीभाँति मन्दिर तक जा भी सकते नहीं थे। ऐसा होने पर उन्होंने अपने स्थान पर भाई रामकृष्ण को लगवा दिया।

अब रामकृष्ण अपने भाई रामकुमार जी की जगह

काली माता के मन्दिर के पुजारी बन गए। ये पूजा का काम बड़े ही प्रेम और परिश्रम से किया करते। भाँति-भाँति के फूल इकट्ठे करके माताजी के लिये मालायें बना कर उनके चरणों पर चढ़ाया करते। कालीजी के आगे कई प्रकार के भक्ति से भरे हुए भजन गाया करते। लोग इनका गान सुन कर मुग्ध हो जाया करते थे। इनकी शुद्ध भावनाओं को देख कर चकित रह जाते थे। महात्मा रामकृष्ण आजकल के पुजारियों की भाँति मूर्ति के सामने केवल घंटी बजानेवाले पुजारियों में से नहीं थे। वे भगवती जगज्जननी के सच्चे पुजारी थे। पूरे भक्त थे।

ये आधुनिक तिलकधारी पुजारी देवताओं के नहीं बल्कि अपने लम्बे चौड़े पेट और कुवासनाओं के पुजारी होते हैं। इन्होंने भगवान् को भारत से असन्तुष्ट करके भगा दिया, नहीं तो इस देश की यह दुर्दशा न होती। अब ये मन्दिरों में रहनेवाली मूर्तियाँ बहुत से व्यभिचारी और दुराचारियों के भोजन का आधार रह गई। इनकी दुर्वासनाओं और दुराचारों के कारण हमारे प्राणाधार नारायण विदेशवासी होगये। उन के पीछे उनकी हृदयेश्वरी लक्ष्मी माता भी चली गईं। अब यह बिना माँ-बाप का देश भूख के मारे तड़प रहा है। यदि ये पुजारी अपने धर्म से विचलित न होते, तो भगवान्

अवश्य इस दीन देश की सहायता करते। वे कई बार प्रमाण दे चुके हैं कि भारत उन्हें सारे संसार से प्यारा है। देखिये और सोचिये, जब मुसलमानों को आवश्यकता पड़ी तो उन्होंने अपने सेवक मुहम्मद को भेजा, जब अंगरेज़ों को आवश्यकता पड़ी तो उस प्रभु ने अपने पुत्र ईसा को भेजा। पर प्यारे पाठको! जब भारतवासियों को आवश्यकता पड़ी तो वे स्वयं श्रीराम और श्रीकृष्ण आदि के रूप में उपस्थित हुए। उनके इस विशेष प्रेम का कारण यहाँ के लोगों की विशेष भक्ति थी। अब वह भक्ति नहीं है तो उन्होंने अपना प्रेम हटा लिया। वे आप के नौकर नहीं हैं जो घंटी बजाते ही हाज़िर हो जायँगे। उनके लिये भक्ति चाहिये। श्रीरामकृष्ण परमहंस की जैसी इस झूठे संसार से विरक्ति और उनके पतित-पावन चरणों में सच्ची अनुरक्ति चाहिये। भक्ति ही भारत के अभ्युदय का एकमात्र उपाय है।

पूजा करते करते एक दिन श्रीरामकृष्ण के चित्त में अनेक प्रकार के संकल्प-विकल्प उठने लगे। वे सोचने लगे—'क्या मूर्त्ति में सचमुच कोई अलौकिक तत्त्व है? क्या यह सत्य है कि यह जगत् की आनन्दमयी माता हैं? क्या इस संसार की जननी यही हैं? क्या सचमुच धर्म कोई वस्तु है?' इस प्रकार से उनके

शान्त हृदय-सागर में कई प्रकार के भ्रमों की लहरें लहराने लगीं। जब से ये शंकायें इनके चित्त में पैदा हुईं तब से इनका सारा समय इन्हीं बातों के चिन्तन में जाया करता था। पूजा समाप्त होने के पश्चात् रामकृष्ण प्रति दिन रो रो कर यों ही कहा करते थे 'क्या सचमुच तुम हो? या सब कल्पना मात्र है'। पुजारी रामकृष्ण के मन में दिन-दिन यह चिन्ता प्रबल होने लगी। वे इसी चिन्ता में भगवतीजी की पूजा भी विधिपूर्वक नहीं करने पाते थे। कभी भोग लगाना भूल जाते थे, कभी बार बार आरती ही करते रहते थे। कभी सब कामों को छोड़ कर चिल्लाने लगते थे "माँ मुझे दर्शन दो, माँ मेरे ऊपर दया करो"।

पुजारी रामकृष्णजी की यह हालत देख कर सांसारिक लोग उन्हें पागल कहने लग गये। इनके घरवाले तथा सम्बन्धी लोग बड़ी चिन्ता करने लगे। अन्त में सब ने यह निश्चय किया कि इनका विवाह कर दिया जाय। विवाह होने पर सम्भव है इनका उन्माद दूर हो जावे। इस निश्चय के अनुसार इनके बड़े भाई ने इनको घर ले जाकर एक समीपवर्ती गाँव के रहनेवाले पं० रामचन्द्र मुखोपाध्याय की पुत्री शारदा देवी के साथ विवाह कर दिया। विवाह के समय शारदा देवी की अवस्था केवल ५ वर्ष की

थी। सुनते हैं कि जिस समय रामकृष्णजी के बड़े भाई इनके लिये योग्य कन्या की खोज में थे, उस समय इन्होंने स्वयं ही शारदा देवी का नाम गाँव आदि बतला दिया था और कहा था कि उस कन्या के साथ मेरा विवाह होना चाहिये। विवाह होजाने पर रामकृष्ण फिर मन्दिर का काम करने लगे, परन्तु इनकी दशा दिन दिन खराब ही होती गई। अन्त में इन्हें मन्दिर का काम छोड़ना ही पड़ा।

मन्दिर से अलग होकर ये एक निकटवर्ती पञ्चवटी में रहने लगे। ये दिन रात आध्यात्मिक विचारों में मग्न रहते थे। सायंकाल के समय जब मन्दिर में आरती हुआ करती थी तब ये बड़े व्याकुल हो जाया करते थे और रोते रोते कहने लगते थे "मां, एक दिन और व्यर्थ चला गया, अभी तक तुम्हारे दर्शन नहीं हुए। इस क्षणभङ्गुर जीवन का एक दिन और चला गया अभी तक मैं यह न जान सका कि 'सत्य क्या है'। रामकृष्णजी कभी २ घंटों अपना सिर पृथ्वी पर पटक-पटक कर रोया करते थे। रानी रासमणि के जमाई बाबू मथुरानाथ रामकृष्ण से बहुत प्रेम करते थे। यह कालीजी का मन्दिर रानी रासमणि ने ही बनवाया था। बाबू मथुरानाथ ने रामकृष्ण के उन्माद की शान्ति के लिये कई इलाज करवाये। उन्होंने

कलकत्ते के बड़े-बड़े डाक्टरों की सलाह ली। परन्तु योगिराज रामकृष्ण की दशा ज्यों की त्यों रही। डाक्टरों की सारी चतुराई व्यर्थ हुई। अन्त में ढाका के एक वैद्यराज को इन्हें दिखलाया। वैद्यराज ने इन्हें भली भाँति देख कर मथुरानाथ बाबू से कह दिया कि तुम व्यर्थ प्रयत्न करते हो, ये योगिराज हैं इनकी कोई चिकित्सा नहीं हो सकती। मथुराबाबू ने वैद्यराज की सलाह मान कर इनके इलाज की चिन्ता बिल्कुल छोड़ दी।

एक समय का वर्णन करते हुए महात्मा रामकृष्ण जी ने अपने प्रिय शिष्य विवेकानन्द से कहा था "वत्स! मान लो कि एक घर में मोहरों से भरी हुई एक थैली रक्खी है और उसके पास ही दूसरे घर में एक चोर रहता है जो इस बात को जानता है। क्या तुम कह सकते हो कि इस चोर को रात के समय नींद आयेगी। नहीं! इस चोर को नींद कभी नहीं आ सकती। वह इस ताक में लगा रहेगा कि मोहरों की थैली कैसे हाथ लगे। इसी प्रकार जिसका यह विश्वास है कि इन बाहरी स्थूल पदार्थों से परे कुछ सत्य अवश्य है, अनन्त अविनाशी तथा आनन्द स्वरूप ईश्वर अवश्य है और उस परमानन्द के आनन्द के सामने इन्द्रियों का सब सुख तुच्छ है, क्या वह मनुष्य उस सत्य को प्राप्त करने के लिये पूरा

प्रयत्न किये बिना रह सकता है ? नहीं ! यह कभी नहीं हो सकता। वह अभीष्ट की प्राप्ति के लिये पूरा उद्योग करेगा और उसके पीछे उन्मत्त हो जायगा। बस, रामकृष्ण जी के उन्माद का कारण यहाँ खुल गया। वे अभीष्ट की प्राप्ति के लिये उन्मत्त हो गये थे।

इस समय रामकृष्ण के इस योग-साधन में कोई सहायक नहीं था। न कोई गुरु था न ज्ञानी पण्डित था किन्तु सब लोग उन्हें पागल कहा करते थे। वे सांसारिक पण्डितों की निगाह में उन्मत्त थे। दिन रात 'माँ माँ' चिल्लाया करते थे। इस अवस्था का वर्णन बहुत कठिन है।

कुछ दिनों के पश्चात् रामकृष्णजी को अनेक प्रकार के दृश्य दिखाई देने लगे। एक दिन जब वे बेसुध पड़े थे, उनको साक्षात् काली माता का रूप दिखाई दिया। इस प्रकार के दृश्य उनको कई बार दिखाई देने लगे और साथ ही साथ उनकी दशा भी दिन दिन सुधरने लगी। इसके बाद रामकृष्णजी के मनमें यह सन्देह पैदा हुआ कि शायद ये दृश्य उनके मस्तिष्क में विकार होने के कारण ही दिखाई देते हों। यह निश्चय करके उन्होंने अपनी परीक्षा लेना चाहा। एक दिन उन्होंने कहा कि यदि रानी रासमणि की दो लड़कियाँ (जो कभी मंदिर

को न आई थीं) आज इस वट वृक्ष के नीचे आकर मुझसे बातचीत करेंगी तो मैं समझूँगा कि ये दृश्य सच है अन्यथा सब झूठ हैं। वास्तव में यह बात जानकर आश्चर्य होता है कि ये दोनों कन्यायें निर्दिष्ट समय पर उसी वट के नीचे आईं और परमहंसजी से कहने लगीं—"तुमको शान्त रहना चाहिए, कालीजी तुम पर कृपा करेंगी। इस तरह बार-बार परीक्षा करने पर रामकृष्णजी को निश्चय हो गया कि ये सब दृश्य कालीजी की कृपा के सूचक हैं।

केवल इन दृश्यों के देखने से रामकृष्णजी सन्तुष्ट न हुए। वे बिल्कुल साक्षात्कार चाहते थे। अन्त में उन्होंने १२ वर्ष पर्य्यन्त एक कठिन तपश्चर्य्या करने का निश्चय किया। अपने निश्चय के अनुसार इन्होंने तप करना प्रारम्भ कर दिया। १२ वर्ष निकलने के बाद रामकृष्णजी जब अपनी तपस्या के समय को याद किया करते, तो कहा करते थे कि "उन दिनों मेरे हृदय में एक प्रकार की धार्मिक आँधी चल रही थी जिसके कारण मुझे सारा जगत उलट-पलट दिखाई देता था।" वास्तव में इस तपस्या का समय बहुत ही बेढब था। सुनने वाले अचरज से स्तब्ध हो जायँगे कि रामकृष्णजी १२ वर्ष तक बिल्कुल नहीं सोये। उन दिनों उनके लिए दिन

रात एक थे। उनकी आँखों में कभी आलस्य नहीं आता था, किन्तु आँखें खुली और निश्चल रहती थीं। कभी-कभी रामकृष्णजी इस भ्रांति में भी पड़ जाया करते थे कि मुझे कोई ऐसा रोग तो नहीं है जिससे न मुझे नींद आती है न आँखें बन्द होती हैं। यह सोचकर कई बार वे अपने हाथ में दर्पण लेकर अपनी आँखें देखने लगते और उनको अपने हाथों से बन्द करने की चेष्टा करते, परन्तु पलकें ज्यों की त्यों रहती थीं। बन्द करने का प्रयत्न करने पर भी खुलीं ही रहती थीं। यह दशा देखकर वे चिल्ला उठते थे—'माँ, ऐ मेरी माँ, क्या तुम्हारी शरण आने का और तुम पर पूरा विश्वास करने का यही फल है'। इतना कहने पर कालीजी अपने भक्त को दर्शन दिया करतीं। उस समय रामकृष्णजी को प्रतीत हुआ करता था कि माताजी मीठी मुसकान के साथ उन्हें कुछ शिक्षा दे रही हैं। उन्हें ऐसे शब्द सुनाई दिया करते : मेरे पुत्र! तुम सर्वोत्तम ज्ञान का लाभ कैसे कर सकोगे, यदि तुम अपने इस स्थूल शरीर से प्रेम करना नहीं छोड़ोगे।' परमहंसजी महाराज स्वयं कहा करते थे कि उन दिनों उन्हें किसी प्रकार का ज्ञान नहीं था। उनका भतीजा

किसी तरह २-४ ग्रास उनके मुँह में डाल दिया करता था परन्तु परमहंसजी को उसका भी ज्ञान नहीं होता था। कभी-कभी इनको अपना सारा शरीर जलता हुआ मालूम पड़ता था। जब इनके शरीर में जलन के कारण विशेष पीड़ा होती थी तो ये श्री गंगाजी के जल में जाकर खड़े हो जाते थे। तब इन्हें कुछ शान्ति मिला करती थी। एक दिन इसी समय एक सन्यास धारण किये हुए ब्राह्मणी आई और उसने इनके शरीर में चन्दन का लेप किया और गले में फूलों की माला पहनाई जिससे तीन दिन के भीतर ही सब ताप दूर हो गया।

यह बात अब तक किसी को ठीक मालूम नहीं है कि यह ब्राह्मणी कौन थी और कहाँ से आई थी। यह संस्कृत की बड़ी विदुषी थी, संस्कृत भाषण में उस समय के बड़े-बड़े पण्डित लोग इसके सामने मौन धारण कर लेते थे। हिन्दू-धर्म के सम्बन्ध में जो बड़े-बड़े ग्रन्थ हैं, उस देवी को सब याद थे। स्वामी विवेकानन्दजी ने इस सन्यासिनी का वर्णन करते हुए कहा था कि यह साक्षात् सरस्वती का अवतार थीं। संगीत विद्या में बड़ी निपुण थीं। सुनते हैं कि जब इस देवी ने रामकृष्ण को देखा तो इन्हें पहचान कर अत्यन्त प्रसन्न हुई और कहने लगी 'वत्स, मैं बहुत समय से तुम्हारी खोज में थी, आज मैंने

तुमको पाया है। जो लोग तुम्हारी भाँति पागल हैं, वे धन्य हैं। वैसे तो सारा जगत् ही पागल हो रहा है कोई धन के लिए पागल है, कोई सुख के लिए पागल है, कोई यश के लिए पागल है और कोई सांसारिक पदार्थों के पीछे पागल है। परन्तु धन्य हैं, वे लोग जो ईश्वर को ढूँढने में पागल हैं। सन्देह नहीं कि संसार में ऐसे मनुष्यों की बड़ी कमी है"।

जिन लोगों ने हमारे परमहंसजी को पागल समझ रक्खा था उन्होंने ब्राह्मणी की इन बातों का अर्थ कुछ नहीं समझा। वे सब लोग अपने-अपने मन में बड़े चकित थे कि यह सन्यासिनी ब्राह्मणी ऐसी विदुषी होने पर भी इस पागल की सेवा में क्यों लग रही है। इसके पश्चात् सन्यासिनी ने यह बात सब लोगों को समझाई कि 'रामकृष्ण पागल नहीं है। यह केवल ज्ञानहीन मनुष्यों का भ्रम है जो इस महात्मा को पागल समझते हैं। वैष्णव ग्रन्थों में यह बात भली भाँति दिखाई है कि जब कोई आदमी अपने इष्ट देवता की भक्ति में मन लगा देता है तो वह मनुष्यों को पागल मालूम होता है और वास्तव में पागल और उसकी दशा में कुछ भेद भी नहीं रहता। भगवान श्रीकृष्ण की भक्ति में श्री चैतन्य देव महाराज की भी ऐसी हालत होगई थी। श्रीमद्-

भागवत में लिखा है कि राधाजी भी श्रीकृष्ण के प्रेम में मग्न होकर पागल हो गई थीं। वास्तव में है भी ठीक। मस्तिष्क विज्ञान के पण्डित लोग इस बात को खूब जानते हैं कि जब मनुष्य का मस्तिष्क एक ही ओर झुक जाता है, अन्य विषयों में नहीं रहता तब अनुपस्थित मना (absent-minded) हो जाता है। अर्थात् उसका मस्तिष्क या मन अपने स्थान पर उपस्थित रह कर अपने और कर्तव्यों का पालन नहीं कर सकता। बस, यही धुन भी कहलाती है। सो जिस मनुष्य ने उस परम पिता जगदीश्वर के चरणों में धुन लगा ली उससे यह आशा रखना व्यर्थ है कि वह सांसारिक पदार्थों का भी ज्ञान रख सके। अस्तु, इस सन्यासिनी की उपस्थिति में ही एक समय श्रीरामकृष्ण को ऐसी भूख लगी कि कितना ही खिलादें परन्तु भूख न मिटे। उनके दावाग्नि के समान अग्नि सन्दीप्त हो गई। रामकृष्ण के घर के लोग उनकी इस दशा को देख कर घबराने लगे परन्तु ब्राह्मणी ने उनको समझाया और कहा कि श्री चैतन्य देवजी की भी यही दशा हो गई थी। ब्राह्मणी ने अनेक प्रकार के शाक व्यञ्जन सुमधुर भोजन बनवा कर के रामकृष्ण के चारों ओर रखे। जब कोई वस्तु उनके पास समाप्त हो जाती थी तब वही वस्तु फिर उनके

पास लाकर रख दी जाती थी। किसी चीज़ की जगह खाली नहीं छोड़ी जाती थी। श्री रामकृष्णजी रात दिन मुँह चलाते ही रहते थे परन्तु उनके पास चारों ओर सब प्रकार के भोजन हर घड़ी धरे रहते थे। कई दिनों तक रामकृष्ण की यही दशा रही। अन्त में उनकी भूख शान्त हुई। यह सन्यासिनी ब्राह्मणी रामकृष्णजी के पास कई वर्षों तक रही और उन्हें योगाभ्यास की की शिक्षा देती रही।

योग-साधन

जब श्री रामकृष्ण को उन्मत्तावस्था बीत जाने पर सुध आई तब वे योग-साधन की चेष्टा करने लगे। रामकृष्ण जी यह बात भली भाँति जानते थे कि जब तक 'अहम्भाव' (मैं) नहीं छूटता तब तक योग में सिद्धि प्राप्त नहीं की जा सकती। योग में प्रवेश करने के लिये 'मैं' बुद्धि का परित्याग करना आवश्यक है। योग का अर्थ जोड़ना या मिलना है, जिससे यह भाव निकलता है कि मनुष्य योगशास्त्र के द्वारा उस ईश्वर में मिलने को चेष्टा करता है जिसका कि वह स्वरूप है। इसके लिये अपने आपको भुलाना पड़ता है। 'अहम्भाव' जब दूर हो जाता है तब ही अभेद बुद्धि होती है। हमारे परमहंसजी इस रहस्य को खूब समझते थे।

रामकृष्णजी के प्रति दिन रो-रोकर बच्चे की तरह 'माँ' (काली माता) से यही भिक्षा माँगा करते थे "माँ तू मेरी 'मैं' नाश करदे। मेरा अहंभाव नाश करके उसके स्थान पर केवल तुम ही रह जाओ माँ, मुझे ऐसा बना दो कि मैं सदा अपने आपको हीन से भी हीन और दीन से भी दीन समझा करूँ। ब्राह्मण हो या क्षत्रिय, वैश्य हो अथवा शूद्र मैं किसी में भेद भाव न समझूँ संसार के पशु पक्षी कीड़े पतंगों को भी मैं अपने से अच्छा समझूँ।" ये विचार रामकृष्णजी के विचार ही नहीं थे किन्तु वे उसी समय अपने संकल्प के अनुसार काम करने लगते थे। वे संसार का नीच से नीच काम करने को तैय्यार रहते थे। कभी किसी नीचे काम से पीछे नहीं हटते थे। उन्हें मेहतर का काम करने में भी कुछ लज्जा या संकोच नहीं होता था। घृणा भाव उनके विशुद्ध हृदय से बिल्कुल उठ गया था। मान-हानि वे बिल्कुल जानते ही नहीं थे। वास्तव में जब तक ऐसा न किया जाय 'अहम्भाव' दूर नहीं हो सकता। और अहम्भाव जब तक दूर नहीं होता तब तक ईश्वर से 'योग' नहीं हो सकता। यही कारण है कि आजकल के साधु महात्माओं को ईश्वर की प्राप्ति में प्रायः असफल होना पड़ता है। वे ईश्वर से मिलना अवश्य चाहते हैं परंतु अपने आपको भुलाना नहीं चाहते। उनकी दशा एक

लोभी और आलसी आदमी जैसी होती है। एक लोभी मनुष्य धन अवश्य चाहता है परन्तु उसकी प्राप्ति के लिये उद्यम करना नहीं चाहता। आराम पसन्द करता है। यही दशा बहुत से साधु महात्माओं की है। उन्हें इतना अहम्भाव होता है कि यदि कोई भोला गृहस्थी भूल से उनके पैर नहीं छूता तो महात्मा जी ऐंठकर आँखें फेर लेते हैं। उन्हें झाड़ू देना तो क्या, भोजन भी और लोगों के सामने करने लज्जा मालूम होती है। बल्कि संसार के साधारण मनुष्यों से भी अहम्भाव की उनमें विशेषता हो जाती है, यही कारण है कि आज भारत में लाखों साधु मूँड मुँडाये, मूँछ कटाये, वस्त्र रंगाये, कमण्डलु उठाये, चिकनी-चुपड़ी रोटी की खोज में मारे-मारे फिरते हैं। परमेश्वर का मिलना तो कहाँ बहुत से साधुओं से आजकल मनुष्य भी मिलना नापसन्द करते हैं। अगर उनसे कोई बात करने लगे तो उस पर ऐसा ज्ञान बैठाते हैं कि किसी तरह बाबाजी का रंग जम जाय, कुछ लड्डू पेड़े और दक्षिणा का ढङ्ग गठ जाय। अन्त में यह भी कह दिया करते हैं कि 'जमाना बड़ा नास्तिक आगया है, कलि का राज्य है, साधु महात्माओं की प्रतिष्ठा दिन-दिन कम होती जाती है लोग नई रोशनी की ओर झुके जाते हैं'। इनसे हम पूछते हैं कि महाराज,

साधु महात्माओं को प्रतिष्ठा की क्या आवश्यकता है ? यदि आप ईश्वर से मिलने के लिये, संसार को छोड़ चुके हैं तो इस तुच्छ प्रतिष्ठा का लोभ क्यों करते हैं ? महात्मा लोगो, जब आप पुराने दीपक में ज्ञान का तेल नहीं डालते और प्रकाश इतना मन्द होगया कि हम दिन-दिन अन्धेरे से घेरे जा रहे हैं तब क्या करें, नई रोशनी का ही सहारा लेते हैं। यदि आपके भरोसे पुरानी रोशनी की ही आशा में पड़े रहें तो किसी दिन अन्धेरा हमारे चारों ओर फिर जायगा। हम सदा के लिये भयानक काल कोठरी में गिर जायँगे और वहाँ मूर्खता के साँप और बिच्छुओं के शिकार बनेंगे। इसलिये, हे भारत के विद्वान्, महात्मा और साधुओ ! यदि आप हमें नई रोशनी में जाने देना नहीं चाहते तो जल्दी करो। इस अपने पुराने महा दीप में स्वच्छ ज्ञान का तेल डालो जिससे हमारे हृदय पटल पर अज्ञान का राज्य न होने पावे। ऐसा होने से हम और प्रकाश को मिट्टी के तेल के प्रकाश के समान हानिकारक समझेंगे।

श्रीरामकृष्ण जी पूरे तपस्वी थे। उन्होंने अपने अहम्भाव को बिल्कुल मिटा दिया। सांसारिक मनुष्य तथा बहुत से पोथियों के भार-वाहक पण्डित लोग रामकृष्णजी को छोटे-छोटे काम अपने हाथ से करते

देख कर पागल भी कह दिया करते थे। इसमें कोई अचरज नहीं। ऐसे महात्मा का स्वरूप बाहरी आंखों से नहीं देखा जा सकता।

जब इनका अहम्भाव इस प्रकार नष्ट होगया, तो इन्होंने सोचा कि मनुष्य अनादि और अनन्त परब्रह्म को प्राप्त करना चाहता है, उसके लिये कामिनी तथा काञ्चन आदि का भुलाना भी आवश्यक है। इसी विचार से उन्होंने सारे जगत की स्त्रियों को अपनी माता समझना शुरू कर दिया। रुपये और गिन्नियों को वे मिट्टी के समान समझने लगे। इन्होंने नीतिकारों का यह कहना चरितार्थ कर दिया कि 'मातृवत्पर-दारेषु पर द्रव्येषु लोष्टवत्, आत्मवत् सर्वभूतेषु यःपश्यति स पण्डितः' अर्थात् वही मनुष्य संसार में पण्डित है जो पराई स्त्रियों को अपनी माता के समान समझता है और पराये धन को मिट्टी के ढेले के समान समझता है तथा दूसरे मनुष्यों को अपने समान समझता है' पाठको! परमहंसजी असली ज्ञानी और पण्डित थे। वे पागल कदापि नहीं थे बल्कि पागल वे लोग थे जो कि उन्हें पागल समझते थे।

कभी कभी परमहंसजी श्री गङ्गाजी के किनारे पर बैठ जाते थे। एक हाथ में एक अशर्फी लेते थे और दूसरे हाथ में एक मिट्टी का ढेला लेते थे और दोनों की तुलना

करके श्री गङ्गाजी के समर्पण कर दिया करते थे। वे उस समय कहा करते थे—ऐ मेरे मन! यह वह वस्तु है, जिसे संसार धन कहता है और जिसके ऊपर महारानी की तसवीर बनी हुई है। इसमें तुमको भोजन देने की शक्ति है तथा धनहीन मनुष्यों को सम्मानित कराने का सामर्थ्य है। इससे बड़े बड़े मकान बन सकते हैं। बड़े बड़े सांसारिक काम सिद्ध हो सकते हैं। परन्तु ज्ञान वैराग्य और ब्रह्म को प्राप्त कराने में यह तुम्हारी सहायता न करेगी। इसके पश्चात् वे दूसरा हाथ फैलाकर कहते थे—ऐ मेरे मन! देख, यह मिट्टी है इससे भी खाद्य पदार्थ, अन्न आदि पैदा होते हैं। मकान भी इसी से बनते हैं देवी और देवताओं की मूर्ति इससे बनती हैं। धन और मिट्टी दोनों समान-गुण जड़ वस्तु हैं, अरे मन, तू इनको लेगा या उस सच्चिदानन्द में लीन होगा" इतना कह कर वे अशर्फी और मिट्टी को एक में मिलाकर गङ्गाजी की धारा में फेंक देते थे। ये अपने उत्तर जीवन में कहा करते थे कि इनको अशर्फी और मिट्टी में कोई भेद नहीं मालूम पड़ता था।

इस प्रकार इन्होंने इस श्रेणी को पार किया और पुराणों के कहे हुए व्रत तथा उपवास करना शुरू किया। इन व्रतों के सम्बन्ध में एक अचरज की बात यह है कि

रामकृष्णजी न तो पुराणों को स्वयं जानते थे और न किसी पण्डित से पूछते थे, परन्तु व्रत आदि सब कार्य पुराणोक्त विधि से कर लेते थे। शास्त्रोक्त विधि का ठीक-ठीक पालन करते थे।

इन व्रत और नियमों की श्रेणी को पार करके रामकृष्णजी महाराज उन्नति की ओर बढ़े और योग साधन का कार्य्य करने लगे। जिस समय रात को चारों ओर सन्नाटा छाया हुआ होता था और सब सांसारिक जीव अपने-अपने स्थानों पर निद्रामग्न होते थे उस समय श्रीपरमहंसजी महाराज योग साधन का कार्य किया करते थे। इस समय हमको एक गीता का श्लोक स्मरण आता है। श्री भगवान् कहते हैं :—

या निशा सर्व भूतानां तस्यां जागर्ति संयमी।
यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः॥

अर्थात् जो सब जीवों के लिए अन्धकारमय रात्रि है योगी पुरुष उस में जागरण करता है। (भाव यह है कि योगी पुरुष समाधि में उस ज्ञान में लीन होता है कि साधारण मनुष्य उससे लेशतः भी परिचित नहीं होते) और जब सारे भूत जागते हैं वह योगी के लिए रात्रि है (अर्थात् सांसारिक मनुष्य जगत् की सब बातों को ठीक

समझ कर उनमें लिप्त रहते हैं परन्तु योगी मनुष्य उनको देखते हुए भी स्वप्न के समान झूंठ समझते हैं)। अस्तु, योगसाधन में रामकृष्णजी ने अद्भुत सफलता प्राप्त की। इनके सिखानेवाले भी इनकी सफलता का देख कर अचरज करते थे। एक दिन श्री रामकृष्णजी योग-साधन कर रहे थे कि एक दम इनके मुंह में से रक्त के दो छिछड़े निकल पड़े। ये उन छिछड़ों को देख कर थोड़ी चिन्ता करने लगे और अपने मन ही मन इसका कारण सोचने लगे। श्रीरामकृष्णजी की यह दशा देख कर इनके पास रहने वाले एक योगी ने इसका रहस्य इनको समझाया। योगी जी ने छिछड़ों के निकलने का कारण यही बतलाया कि रामकृष्णजी को संसार का उपदेश द्वारा उपकार करना था। उन्होंने कहा कि जो योगी योगाभ्यास में पूरी तरह सफल हो जाते हैं उन का रक्त मस्तिष्क की ओर बहने लगता है और वे समाधिस्थ होकर श्री परमात्मा में लीन हो जाते हैं तथा उस अलौकिक सुख का अनुभव करने लगते हैं। परन्तु जिनके लिये परमात्मा की यह इच्छा होती है कि वह संसार में रह कर मनुष्य जाति का कुछ उपकार करें, वे थोड़ी देर ही समाधि में रहते हैं पश्चात् उनके मुँह के द्वारा वह रक्त बाहर की ओर निकल पड़ता है जो कि समाधि की अवस्था में मस्तिष्क

की ओर बहा जा रहा था। इन योगियों के लिये परमात्मा का यह आदेश होता है कि ये चेतन अवस्था को प्राप्त होकर संसार में ज्ञान का प्रचार करें।

आपको वह विदुषी सन्यासिनी याद होगी जिसने परमहंसजी को प्रारम्भ से योग विद्या की शिक्षा दी थी। परमहंसजी ने इस विदुषी की सारी योग विद्या को ग्रहण कर लिया पर उन्हें सन्तोष न आया। अब परमहंसजी की यह इच्छा हुई कि किसी वेदान्त शास्त्र के विद्वान से वेदान्त पढ़ें। इस इच्छा के होते ही परमात्मा की कृपा से परमहंसजो के पास पञ्चवटी में एक वेदान्त के उद्‌भट विद्वान् सन्यासी उपस्थित हुए। परमहंसजी के जीवन में भी अन्य बहुत से महापुरुषों की भाँति यह एक अद्‌भुत बात थी कि वे जब किसी वस्तु की इच्छा करते थे परमात्मा उसी समय उस वस्तु को उनके पास पहुँचा देता था। श्री गुसाँई तुलसीदासजी ने रामायण में यह बिल्कुल ठीक कहा है—

"जा को जा पर सत्य सनेहू। मिलहि ताहि नहिं कछु सन्देहू"

उक्त सन्यासीजी तोतापुरी के नाम से पुकारे जाते थे। ये नैष्ठिक ब्रह्मचारी थे। वेदान्तशास्त्र के बड़े मर्मज्ञ विद्वान् थे। ये बिल्कुल दिगम्बर रहते थे। वस्त्र धारण नहीं करते थे। छाया में विश्राम नहीं करते थे। इन्हें

आकाश का शामियाना ही अच्छा लगता था। चाहे वर्षा हो, शरद् हो, वसन्त हो, ग्रीष्म हो, ये सदा पृथ्वी पर छायाहीन जगह में विश्राम लेते थे। वास्तव में महात्माओं के लिये छाया, ताप, जल आदि सब चीज़ें कोई प्रभाव नहीं रखतीं। तोतापुरीजी उच्च कोटि के महात्मा थे। सारे देश में ज्ञान का प्रचार करना ही इन का मुख्य काम था। वे किसी भी स्थान पर तीन दिन से अधिक नहीं ठहरते थे। पाठको! यदि भारत में आज भी कुछ तोतापुरी जैसे सन्यासी होते तो देश इस दुर्गति में न पड़ता। पर दुःख है आधुनिक सन्यासियों में परोपकार के भाव बहुत कम होते हैं।

श्री तोतापुरीजी महाराज ने परमहंस को जब गंगाजी के किनारे बैठे देखा तो उन्हें यह निश्चय होगया कि यह कोई उच्च-कोटि का योगी है। उन्होंने श्रीपरमहंसजी से कहा 'वत्स, क्या तुम सचमुच मोक्ष का मार्ग जानना चाहते हो, यदि ऐसा है तो आओ मैं तुमको ठीक रास्ता बतला दूँगा।" परमहंसजी का यह नियम था कि वे प्रत्येक कार्य में अपनी माता श्रीकालीजी की आज्ञा ले लिया करते थे। इसलिये वे तोतापुरी से बोले 'मुझे नहीं मालूम, मैं क्या करूँगा, अपनी माँ से पूछ कर आप को उत्तर दूँगा'। इतना कह कर परमहंसजी वहाँ से चल दिये।

थोड़ी देर में वापिस लौटे और तोतापुरी से वेदान्त की शिक्षा प्राप्त करने की इच्छा प्रकट की। तोतापुरीजी ने इनको योग की शिक्षा देना प्रारम्भ कर दिया। महात्मा रामकृष्ण परमहंस ने इस सारी शिक्षा को तीन दिन में ही ग्रहण कर लिया। इतने थोड़े समय के अभ्यास से ही इन्होंने समाधि की सब से ऊँची श्रेणी निर्विकल्पक-समाधि को प्राप्त कर लिया। निर्विकल्पक समाधि उसे कहते हैं जब कि मनुष्य को ज्ञाता ज्ञेय तथा कर्ता और कर्म में किसी प्रकार का भेद प्रतीत न हो। तोतापुरीजी ने रामकृष्णजी की यह सफलता देख कर बड़ा अचरज किया और श्रीपरमहंसजी से बोले "वत्स! जो सफलता मैंने चालीस वर्ष के पश्चात् बड़े कठिन परिश्रम से पाई है उसको तुमने तीन ही दिन में प्राप्त कर लिया इसलिये आज मैं तुम्हें अपना शिष्य नहीं समझूँगा। बल्कि प्रिय सखा समझूँगा।" परमात्मा की लीला बड़ी अद्भुत है। वह क्षण भर में योग्य से योग्य विद्वान् को पागल बना देता है और क्षण भर में ही उसे जगत् का श्रद्धेय देवता बना देता है। श्री रामकृष्णजी को प्रायः सब लोग पागल कहा करते थे पर समय आया कि सांसारिक मनुष्य भी उन्हें पहचानने लगे और वे अत्युच्च श्रेणी के योगी कहलाने लगे। अस्तु, कभी-कभी तोता-

पुरीजी को भी श्री रामकृष्ण की शिक्षा माननी पड़ती थी। सुनते हैं कि एक समय तोतापुरीजी अपनी धूनी पर बैठे हुए श्री रामकृष्ण से सत्संग वार्तालाप कर रहे थे। इसी समय एक मनुष्य ने धूनी में से आँच लेकर अपनी चिलम भर ली। यह देखकर तोतापुरीजी बड़े क्रुद्ध हुए और उस आदमी को फटकारने लगे कि तूने मेरी धूनी को अपवित्र बना दी। तोतापुरीजी का यह व्यवहार देख कर श्री रामकृष्णजी बड़ी नम्रता से कहने लगे—"गुरु जी महाराज, क्या इसी प्रकार आप जगत् के सब पदार्थों को ब्रह्म मानते हैं ? क्या वह आदमी और अग्नि ब्रह्म से भिन्न है ? ज्ञानी पुरुषों को ऊँच और नीच से क्या मतलब ? यह बातें सुनकर तोतपुरीजी के उद्विग्न हृदय में एकदम शान्ति आगई। और वे श्री रामकृष्ण से बोले—'भाई, तुम ठीक कहते हो, आज से तुम मुझे कभी क्रोध में न देखोगे।" इसके पश्चात् तोतापुरीजी श्री रामकृष्ण के साथ ११ मास रहे परन्तु उन्होंने कभी किसी पर क्रोध नहीं किया।

श्री तोतापुरी महाराज के चले जाने पर भी परमहंस जी प्रायः निर्विकल्पक समाधि की दशा में ही रहा करते थे। समाधि के पश्चात् परमहंसजी इस निर्विकल्पक अवस्था को याद करके कहा करते थे—"मैं ६ मास

तक निरन्तर परब्रह्म में लीन रहा। इस समय मैं जिस अवस्था में था उस अवस्था को बिरले ही योगी पहुँचते हैं। और जो योगी इस अवस्था को प्राप्त हो जाते हैं उनकी समाधि फिर छूटती नहीं···इन दिनों मुझे बाहरी जगत् का कुछ ज्ञान न था। यहाँ तक यदि एक साधु न आ जाता तो मेरा देहावसान हो जाता। इस साधु ने मुझे उस दशा में देख कर समझ लिया कि मैं समाधिस्थ हूँ। इसलिए उसने अनेक यत्न करके मेरे शरीर की रक्षा की।' छः मास तक निरन्तर समाधिस्थ रहने के पश्चात् श्री परमहंसजी संग्रहणी से रोगी रहने लगे इसलिये वे समाधिस्थ नहीं रह सके।

इस प्रकार श्री रामकृष्णजी ने पहले कर्म-मार्ग द्वारा सिद्धि प्राप्त करके पश्चात् योग-साधन किया। श्री परमहंस जी ने दोनों मार्गों में कुछ अन्तर नहीं समझा। वास्तव में कर्म और योग में अन्तर समझना भ्रम ही है। दोनों का एक ही अन्तिम उद्देश्य है।

योग-साधन के पश्चात् एक समय श्री रामकृष्णजी के मन में यह विचार पैदा हुआ कि भगवान् श्रीरामचन्द्रजी की भक्ति करनी चाहिये। इसके लिये उन्होंने दास भाव से श्री रामचन्द्रजी का ध्यान करना निश्चय किया। यह

बात उन्हें भली भाँति मालूम थी कि श्री रामचन्द्रजी के सबसे विशेष कृपा-पात्र भक्त हनुमान्जी ही थे। श्री हनुमान्जी की भक्ति किसी स्वार्थ से नहीं थी। वे निःस्वार्थ राम-भक्त थे। इसलिए रामकृष्णजी अपने आपको हनुमान् मानकर श्रीभगवान की सेवा करने लगे। पाठक इस बात को अब तक भली भाँति समझ चुके होंगे कि परमहंसजी जिस कामको करना निश्चय करते थे उसीमें लीन हो जाते थे। जब ये हनुमान् बनकर श्री रामचन्द्रजी की भक्ति करने लगे तो इनका रहन सहन व्यवहार सब श्री हनुमानजी जैसा ही हो गया था। यदि कोई मनुष्य इनके पास फल डाल देता था तो उसे बन्दरों को तरह ही कूदते फांदते खा लेते थे। उस समय में मुश्किल से कोई मनुष्य इनके पास आने की हिम्मत करता था। जिस समय "श्री रघुवीर" का उच्चारण किया करते थे उस समय आस पास के लोग चौंक उठते थे। कभी कभी ये कपड़े की पूँछ लगा कर वृक्षों पर भी जा बैठा करते थे। यदि इनको खाने के लिए कुछ न दिया जाता तो बड़ा कोलाहल मचाया करते थे। अन्त में जब इन्हें फल फूल मिलते तो कूदने लगते थे। उस समय इन के सब काम बन्दरों जैसे होते थे। दिन रात 'रघुवीर रघुवीर' चिल्लाया करते थे। जहां कहीं जाते बड़ा ऊधम

मचाते थे। इसी समय एक आचार्य्य सन्यासी ने इन्हें श्रीराम मन्त्र की दीक्षा भी दी। श्री रामकृष्णजी के पास एक रामचन्द्रजी की पीतल की बनी हुई मूर्ति भी थी। यह मूर्ति उन्हें एक साधु से मिली थी। इसे देख देख कर रामकृष्ण बहुत प्रसन्न हुआ करते थे। सुना जाता है यह मूर्ति अब भी श्रीदक्षिणेश्वर के मन्दिर में विराजमान् है।

इसके पश्चात् श्री परमहंस ने भगवान् कृष्णचन्द्र की भक्ति का बीड़ा उठाया। श्रीकृष्ण-भक्ति को उन्होंने सखा-भाव से करना आरम्भ किया। कई बार ये अपने आपको सुदामा बनाते थे और ऐसा भाव दिखाते थे जैसे भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र के साथ खेल रहे हों। कभी-कभी वे नाचने लगते थे। कई बार इनकी दशा से ऐसा मालूम पड़ता था जैसे कि ये जङ्गल में श्रीभगवान् की खोज कर रहे हों। कभी-कभी ऐसा भाव दिखाया करते थे मानो श्रीकृष्ण इनको मिल गये हों। ऐसे समय पर ये रो रोकर कहने लगते थे—"भाई कन्हैया, अब मैं तुम्हें कभी नहीं छोड़ूँगा। तुम्हारे बिना मेरे प्राण व्याकुल हो जाते हैं। तुम्हारे विरह में मुझे सारा जगत् सूना दिखाई पड़ता है। भाई, लो, यह लो, फल खालो।" इस तरह से श्री रामकृष्ण प्रेम में मग्न होकर कई प्रकार की लीलायें किया करते थे।

सखा भाव से श्रीकृष्ण भक्ति के आनन्द का अनुभव करके, रामकृष्णजी ने सखी भाव से साधन करना निश्चय किया। वे सखी का रूप धारण करके हाथ में चँवर लेकर श्रीकाली जी के पास दासी के तरह खड़े रहते थे और कभी-कभी नाच नाच कर चँवर डुलाने लगते थे। कभी-कभी खूब आभूषण धारण करके बैठ जाते और कहने लगते—'ललिता सखी तुम कहाँ हो, सखि विशाखे, तुम कहाँ हो ? एक बार मुझ पर दया करो। मैं बहुत ही दीन हूँ। मुझे और कोई उपाय नहीं सूझता। मैंने सुना है कि तुमने राधा को अपने प्रेम से वशीभूत कर लिया है। तुम्हारी दया के बिना राधाजी के दर्शन नहीं हो सकते। मैं पूजा करना नहीं जानती। मुझे भजन करना भी नहीं आता। मैं तुम्हारी दासियों की दासी हूँ। मेरे ऊपर दया करो। बिना तुम्हारी दया के मुझे राधा के दर्शन नहीं हो सकते।' इस प्रकार बोलते बोलते रामकृष्णजी की आँखों से प्रेम के आँसू टपकने लगते थे। कण्ठ गद्गद् हो जाता था। फिर धीरे धीरे विरह के गाने गाते हुए परमहंसजी समाधिस्थ हो जाते थे। सखी भाव का समय रामकृष्ण जी स्त्रियों में ही बिताया करते थे। स्त्रियाँ उनसे पर्दा नहीं करती थीं और निःसंकोच होकर उनके सामने आ जाया करती थीं। बूढ़ियाँ उन्हें पुत्र कह कर

सम्बोधित किया करती थीं और समवयस्क स्त्रियाँ उन्हें साधु कह कर पूजा करती थीं। इन दिनों जब कभी ये बाहर जाते थे तब भी स्त्री के लिबास में ही होते थे।

सखी-भाव साधन करने के पश्चात् श्री रामकृष्ण परमहंस सिक्ख धर्म में दीक्षित हुए। सिक्ख-धर्म में भी उन्होंने और धर्मों के समान सफलता प्राप्त की। इसके पश्चात् थोड़ा थोड़ा समय हिन्दू-धर्म के सभी सम्प्रदायों को दिया। इसका उद्देश्य यह निश्चय करना ही था कि ईश्वर एक स्वरूप और सर्व-व्यापक है अथवा उसमें कहीं कुछ भेद-भाव है। अन्त में उन्होंने अपने इस अनुभव को भली भाँति जान लिया कि वह प्रभु सबके लिये एक है। यह साम्प्रदायिक भेद-भाव सब बाहरी है, असली कोई भेद नहीं।

सारे हिन्दू-धर्म के सम्प्रदायों का मन्थन करने पर भी श्री रामकृष्णजी को पूरा सन्तोष नहीं हुआ। उन्होंने सोचा कि क्या ईश्वर हिन्दुओं का ही है? क्या मुसलमानों को बनानेवाला ईश्वर कोई दूसरा है? बस, इन सन्देहों को दूर करने के लिये परमहंसजी ने मुसलमान धर्म में जाना निश्चय किया। परमहंसजी के जीवन में यह एक अद्भुत बात रही, कि जिस समय जो कुछ संकल्प इनके दिल में उठता था, उसी समय उस संकल्प

की पूर्ति की सामग्री इनके पास तैयार हो जाती थी। जब रामकृष्णजी ने इस्लाम धर्म का सार जानने की इच्छा की, उसी समय एक गोविन्ददास नामक पुरुष इन्हें मिल गया। यह पुरुष बहुत समय से गुप्त रूप में मुस्लिम धर्म के अनुसार ईश्वर का भजन कर रहा था। गोविन्द-दास ने श्री रामकृष्ण को इस्लाम धर्म की दीक्षा दी। परमहंसजी ने तीन दिन तक गोविन्ददास के बतलाये हुए नियमों का यथाविधि पालन किया। इस समय कोई मनुष्य श्रीरामकृष्ण परमहंस को यह नहीं कह सकता था कि ये कट्टर मुसलमान नहीं हैं। यहाँ तक कि तीन दिन तक परमहंसजी ने अपनी स्नेहमयी।माता श्री कालीजी के दर्शन भी नहीं किये। तीन दिन के पश्चात् रामकृष्ण जी का यह भाव भी जाता रहा। उस कट्टरपन से तीन दिन तक मुसलमान धर्म में रह कर उन्होंने देख लिया कि हिन्दुओं के धर्म और मुसलमानों के धर्म में कुछ अन्तर नहीं है। ज्ञान-हीन मुसलमान हिन्दुओं को काफिर कह डालते हैं तथा धर्म के असली रहस्य को न जानने वाले हिन्दू मुसलमानों को नास्तिक कह दिया करते हैं। इस भेद-भाव का कारण केवल अज्ञान है। वास्तव में दोनों धर्मवालों का आराध्य देव एकश्री परमेश्वर ही है।

इस्लाम धर्म का तत्त्व देख कर रामकृष्णजी की रुचि

ईसाई-धर्म की ओर हुई। एक दिन श्री परमहंसजी ने ईसा की माँ 'मेरी' की गोद में सोते हुए ईसा का चित्र देखा। पहले तो परमहंस यह न समझ सके कि यह चित्र ईसा और ईसा की माँ का है। इसलिए वे चित्र की ओर टकटकी लगा कर देखने लगे और 'माँ-माँ' पुकारने लगे। इसी समय रामकृष्णजी यह अनुभव करने लगे कि जैसे ईसा की ज्योति निकल कर उनके शरीर में प्रवेश कर रही हो। इसके बाद वे तीन दिन तक ईसा का ही ध्यान करते रहे। इन तीन दिन में परमहंसजी ने एक बार भी काली, कृष्ण, राम या शिव को याद नहीं किया। उनके पास एक ईसा का चित्र भी था जो कि अब भी श्रीदक्षिणेश्वर के मन्दिर में विराजमान् है।

रामकृष्णजी महाराज ने बौद्ध धर्म के रहस्य को भी भली-भाँति जान लिया था। इनके पास एक बुद्धदेव की सुन्दर मूर्ति भी थी।

इस तरह सब धर्म और सम्प्रदायों में घूम कर श्री रामकृष्णजी ने यह निश्चय किया कि ईश्वर-प्राप्ति के लिये किसी खास धर्म के सहारे की आवश्यकता नहीं। हर एक धर्म में रह कर मनुष्य भगवान् का भजन कर सकता है। ईश्वर सबके लिये एक है। एक धर्म को

दूसरे धर्म से अच्छा मानना केवल अज्ञान और भ्रम है। धर्म सभी एक जैसे हैं।

इस प्रकार साधन समाप्त होने के बाद रामकृष्ण परमहंसजी बड़े स्वच्छन्द भाव से रहने लगे। वे अपने समय को अधिकता से साधुओं के सत्संग में बिताया करते थे और कभी-कभी 'हरि-हरि' पुकार कर नाचने लग जाते थे। कभी श्री कालीजी के मन्दिर में जाकर ताली बजाकर नृत्य करने लगते थे और कभी 'जय शिव' कह समाधि लगा लिया करते थे। कभी 'रघुवीर रघुवीर' चिल्लाने लगते थे। कभी चींटियों को शक्कर डालते फिरते थे। यदि भूल से परमहंसजी का पाँव हरी २ कोमल घास पर पड़ जाता था तो ये रोने लग जाते थे और क्षमा प्रार्थना करते थे। जब कभी परमहंसजी वेदान्त के किसी विषय पर उपदेश देते थे तो ये एकदम परमानन्द में मग्न हो जाते थे। मतलब यह है कि जो भाव उनके हृदय में होता था, वे उसी में लीन हो जाते थे और सारे जगत को ब्रह्ममय देखने लगते थे।

विवाह

जिस समय श्री रामकृष्णजी का विवाह-संस्कार हुआ था उस समय इनकी स्त्री की अवस्था केवल ५ वर्ष की थी। यह पहले कहा जा चुका है कि यह विवाह श्री राम-

कृष्ण की इच्छा से ही हुआ था। जिस समय इनके भाई योग्य कन्या की खोज में थे तब रामकृष्णजी ने स्वयं इस कन्या का निर्देश किया था। लोगों ने तथा सब घरवालों ने पहले यही सोचा था कि शायद विवाह होने पर रामकृष्ण का उन्माद दूर हो जाय, परन्तु इनकी दशा दिन पर दिन विचित्र होती गई। अस्तु, विवाह होने पर भी, जब इनकी हालत नहीं सुधरी तो सब लोग इनको पूरा पागल समझने लगे। चारों ओर यह बात फैल गई कि 'रामकृष्ण पागल होगया।' रामकृष्णजी के ससुरालवाले भी इस बात को भली भाँति जान गये थे। सब साधन समाप्त होने के पश्चात् एक दिन परमहंसजी महाराज के मन में यह विचार पैदा हुआ कि ससुराल चल कर स्त्री से मिलना चाहिये। बस, यह विचार होते ही परमहंसजी ससुराल के लिये रवाना हो गये और बिना किसी संकोच के एकदम अपने श्वसुर के घर में जा खड़े हुए। उनकी स्त्री उस समय घर के काम-काज में लग रही थी। जब उसने अचानक एक अपरिचित पुरुष को घर के आँगन में खड़ा देखा तो एकदम हैरान होकर अपनी माता को पुकारने लगीं और बोलीं—'मां, देखो घर में एक पागल घुस आया है।' यह सुन कर रामकृष्णजी की सास एक दम बाहर आईं और ध्यान से इनकी ओर देखने लगीं। पहले

तो वे रामकृष्ण को न पहचान सकीं परन्तु कुछ समय बाद उन्हें याद आई कि यह उनके जमाई श्रीरामकृष्ण थे। याद आते ही उनकी आँखों में आँसू आ गए और यह कहती हुई कि 'क्या मेरे भाग्य में यही था' वह वृद्ध बेचारी पछाड़ खाकर गिर पड़ी। थोड़ी देर में होश में आई तब वह परमहंस की ओर देखने लगी। इतनी देर में रामकृष्ण ने पूजा की सारी सामग्री तैयार करके अपनी स्त्री से कहा कि 'मेरे सामने चौकी पर आकर बैठ'। बेचारी बाला चुपचाप इनके कहने से चौकी पर आकर बैठ गई। इसके पश्चात् रामकृष्ण अपनी स्त्री को 'माँ-माँ' कह कर उनके चरणों पर पुष्पाञ्जलि देने लगे। यह देख कर रामकृष्ण की सास को बड़ा क्रोध आया और वह इनको अनेक कटु वाक्य कहने लगी। पूजन समाप्त कर के श्रीरामकृष्ण वहाँ से चल पड़े। श्रीरामकृष्ण की धर्मपत्नी की अवस्था इस समय लगभग १६ वर्ष के हो गई थी, परन्तु अभी तक वह अविवाहिता कुमारी के समान ही थीं। दाम्पत्य प्रेम का उनको लेशतः भी ज्ञान नहीं था इस कारण इस घटना का प्रभाव उनके चित्त पर कुछ भी नहीं पड़ा। 'पति' क्या होता है इतना भी अभी उन्हें मालूम न था। जैसे रामकृष्ण पत्नी भाव को नहीं जानते थे, वैसे ही यह भी पति भाव को नहीं जानती थीं।

अस्तु, जब श्रीरामकृष्णजी दक्षिणेश्वर चले गए तब इनकी स्त्री अपने पिता के घर ही रहती थी। इस प्रकार उसने २ वर्ष अपने माता-पिता के साथ बिताये। ये लोगों से अभी तक रामकृष्ण के पागलपन का हाल ही सुना करती थीं, परन्तु अब कुछ लोगों से यह सुनने लगीं कि रामकृष्णजी पागल नहीं हैं, किन्तु एक बड़े भारी ज्ञानी महात्मा हैं। यह सुन कर उनके मन में अनेक प्रकार के संकल्प-विकल्प उठने लगे। अन्त में उन्होंने यह निश्चय किया कि पतिदेव के दर्शन अवश्य करने चाहिये और यह निश्चय करना चाहिये कि वे ज्ञानी हैं या पागल हैं। इन सब बातों को सोच कर इन्होंने अपने पूज्य पति के दर्शन करने जाने के लिए अपनी माँ से आज्ञा माँगी। जब माता ने इन्हें आज्ञा दे दी तो ३०-४० मील पैदल चल कर श्री दक्षिणेश्वर पहुँचीं। इन्हें देख कर रामकृष्णजी ने इनका आदरपूर्वक स्वागत किया और उन्हें समझाने लगे कि 'जो रामकृष्ण तुम्हारा पति था उसका अब देहान्त हो चुका है, मैं दूसरा रामकृष्ण हूँ। मैं किसी भी स्त्री को पत्नी-भाव से नहीं देखता हूँ। मुझे तो यह ज्ञान होगया है कि सारे संसार की स्त्रियाँ मेरी माँ हैं।' यह कह कर रामकृष्ण अपनी स्त्री के पैरों पर गिर पड़े। यह सब बातें देख कर रामकृष्णजी की धर्मपत्नी अपने

पति के मन का भाव समझ गईं और उनसे यह प्रार्थना करने लगीं 'स्वामिन्, मेरी यह इच्छा बिल्कुल नहीं कि मैं आप की तपस्या में बाधा डाल कर आपको गृहस्थ बनाने की चेष्टा करूँ। मैं आपकी आज्ञा पाकर केवल इतना चाहती हूँ कि आपकी सेवा में रह कर श्रीभगवान् का भजन करूँ।' रामकृष्णजी ने यह प्रार्थना स्वीकार कर ली और इनकी धर्म्मपत्नी भी श्रीदक्षिणेश्वर के मंदिर में रहने लगीं। वह नित्य श्रीरामकृष्ण को परमेश्वर समझ कर पूजा किया करती थीं।

एक दिन किसी परमहंसजी के शिष्य ने इनकी धर्म्म-पत्नी को १००००) रुपया भेंट करना चाहा। जब इस शिष्य ने ऐसी इच्छा प्रकट की तब इनकी धर्मपत्नीजी ने यह भेंट स्वीकार करने से साफ इन्कार कर दिया। उन्होंने उस शिष्य को समझाया—'मेरे पतिदेव ने संसार के सब सुखों और धन को छोड़ कर यह अलौकिक ज्ञान प्राप्त किया है, इसलिये न मैं संसार के सुख की परवाह करती हूँ और न धन की परवाह करती हूँ। मैं जहाँ तक हो सका अपने पतिदेव का अनुकरण करूँगी।' सज्जनो! संसार में पतिभक्ति का इससे उत्तम दृष्टांत मिलना कठिन है। आजकल की स्त्रियों को इनके चरित्र से उपदेश लेना चाहिए। यह बात बड़े दुःख की है

बहुत-सी स्त्रियाँ यदि अपना स्वार्थ सिद्ध न हो तो अपने पति से विमुख हो जाती हैं। उनका निरादर करती हैं, यहाँ तक कि कई दुष्टाएँ उनके जीवन की अशुभ-चिंतक बन जाती हैं। बहुत-सी स्त्रियाँ आभूषणों से ही प्रेम करती हैं। यदि पतिदेव खूब कमा कर पत्नीजी को गुड़िया की भाँति सजाये रखते हैं तब तो उनकी 'आओजी आओजी' बनी रहती है, नहीं तो बेचारे घर में नहीं घुसने पाते और यदि हिम्मत करके ज़नानखाने में घुस भी जायँ तो जब तक उनके पाव-भर खून को कड़ी-कड़ी बातों से न जला दिया जाय तब तक उनका पिंड नहीं छूटता है। स्त्रियों के समान-अधिकारों के लिए हलचल मचाने-वाले पाठको ! क्या यह मुफ्तखोरी, स्त्रियों को पुरुषों की समानता देने के योग्य बतलाती है ? जब तक भारतवर्ष की स्त्रियाँ अपने हाथ से पुरुषों की भाँति मुश्किल से मुश्किल काम करने को तैयार न हों, जब तक वे इन रत्न जटित आभूषणों का अनुराग छोड़ने को तैयार न हों तब तक यह स्वाभाविक है कि वे पुरुषों की गुलाम रहेंगी। उनका स्वार्थ है। यदि वे पुरुषों का सहारा न लें तो भूख के मारे तड़प-तड़प कर मर जायँ। यह सुन्दर सुन्दर ज़ेवरों की जगमगाहट स्वप्न में भी न दिखाई दे। हमारे पुराने ऋषियों ने जो गृहस्थ के नियम बनाये थे, उनका

मतलब केवल कार्य-विभाग (Division of labour) ही था। पुरुष घर से बाहर का काम करें। स्त्रियाँ घर के भीतर का काम करें और घर का सब इन्तजाम करें। यदि घर के भीतर के काम से भी आप उन्हें छुट्टी दिलाना चाहते हैं तो उन्हें कहिये कि वे इन आभूषण और भोगविलास के सुखों का ध्यान छोड़ कर मैदान में आवें, सांसारिक विपत्तियों का सामना करें। यह नहीं कि बच्चे-बच्चियों के पैदा करने का आनन्द तो दोनों मिल कर उठावें और पालन-पोषण तथा शिक्षा का भार बेचारे पुरुष के सिर पर रख दिया जाय। आजकल की नए फैशनवाली बहुत-सी स्त्रियां बच्चे को दूध पिलाने में भी संकोच करती हैं। उनके लिये एक धाय (धात्री) चाहिये, एक परिचारिका (Maid Servant) भी चाहिये। क्यों साहब, इनके वेतन के लिये रुपया कहाँ से आवेगा? श्रीमती जी के लिये एक रसोइया चाहिये, पैर में स्लीपर या सुन्दर अंगरेज़ी जूता और शरीर में बढ़िया रेशमी साड़ी और पेटीकोट चाहिये। बस, श्रीमतीजी दिन भर कुर्सी तोड़ती रहा करें। यदि विशेष कृपा करें तो रोज के काग़ज़, कलम, दवात बिगाड़ डालें। पुरुष बेचारे दिन भर दफ़्तर में रगड़े जायँ और शाम को आकर श्रीमती जी के रगड़े खाँय। म्याऊँ बने बैठे रहें। तब स्त्रियों के

अधिकारों की रक्षा हो। पाठको, ये दुर्विचार भारत की प्राचीन पवित्रता का लोप कर देंगे। देश के महत्त्व का नाश कर देंगे। स्त्रियों के लिये पति ईश्वर है। वह उनके लिये सर्व शक्तिमान् प्रभु है। इसलिये प्रिय पाठक और पाठिकाओ, पतिव्रत-धर्म के महत्त्व को समझ कर इसका प्रचार करो। बस स्त्रियों के लिये पूरी पतिव्रता होना ही सब से बड़ी उन्नति है।

श्रीरामकृष्णजी की धर्मपत्नी ने अपने पतिदेव के समान ही, मा, बाप, घर बार, सबका स्नेह छोड़ कर श्रीराम और कृष्ण के चरणों में स्नेह लगा लिया।

तीर्थाटन

श्रीरामकृष्ण परमहंसजी प्रायः बाबू मथुरानाथ के मकान पर ही रहा करते थे। हम बाबू साहब का उल्लेख पहले कर चुके हैं। ये रानी रासमणि के जमाई थे। प्रारम्भ में इन्होंने श्रीरामकृष्णजी की चिकित्सा के लिये बड़ा प्रयत्न किया था। अब ये श्रीरामकृष्णजी का असली स्वरूप पहचान कर उन के असाधारण भक्त हो गए थे।

एक दिन बाबू मथुरानाथ की धर्म्मपत्नी ने तीर्थ-यात्रा करने का विचार प्रकट किया। बाबू साहब ने कहा

कि यदि श्रीपरमहंसजी महाराज अपने साथ चलने को तैय्यार हों तब तो मैं चलने के लिए उद्यत हूँ, नहीं तो तुम जा सकती हो। मैं महाराज के साथ बिना तीर्थयात्रा नहीं करूँगा। जब श्रीपरमहंस देव से इस प्रकार की प्रार्थना की गई तो वे तीर्थाटन के लिए तैय्यार हो गये। अन्त में शुभ महूर्त देख कर बाबू मथुरानाथ, उनकी धर्म्मपत्नी और श्रीपरमहंस देव तीर्थयात्रा के लिये घर से निकले। सब से पहले यह लोग श्रीकाशीधाम पहुँचे। काशी में इन्होंने श्रीविश्वनाथ और अन्नपूर्णा देवी के दर्शन किये। बस, दर्शन करते ही श्रीपरमहंस देव तो भाव में आकर शिथिल हो गए, इन का शरीर एक-दम जड़वत् हो गया। बड़ी कठिनाई से बाबू मथुरानाथजी इन्हें डेरे पर लाये। इसी भाँति जब कभी महात्मा रामकृष्णजी देवदर्शन के लिए जाते थे तब भक्ति-भाव में मस्त होकर अचेत हो जाते थे। शून्य होकर पृथ्वी में गिर पड़ते थे। इस अचेतन अवस्था में श्री रामकृष्णजी क्या अनुभव करते थे, यह बात किसी को मालूम नहीं। हां, यह प्रायः, श्री रामकृष्णजी को जिन्होंने देखा है, वे सब जानते हैं। इस अवस्था में रामकृष्णजी को किसी बात की सुध नहीं रहती थी।

श्री परमहंसजी पूरे ज्ञानी महात्माओं के दर्शन के

लिए बड़े उत्सुक रहते थे। इनकी यह इच्छा बनी ही रहती थी कि किसी ब्रह्मज्ञानी से वार्तालाप हो, परन्तु जैसे ब्रह्मज्ञानी महात्मा श्रीरामकृष्णजी चाहते थे, उनकी संसार में बड़ी कमी है। परन्तु तथापि भारतवर्ष बिल्कुल शून्य नहीं है। किसी समय तो यह देश अध्यात्म विद्या के जाननेवालों से ही भरा हुआ था, बस यही इसका एक असाधारण महत्व था। अन्त में श्रीरामकृष्णजी को एक बड़े विद्वान् महात्मा के दर्शन हुए। यह महात्मा त्रैलङ्ग स्वामी के नाम से प्रसिद्ध थे। इनके दर्शन से श्री परमहंसजी को बड़ी प्रसन्नता हुई।

इस प्रकार श्रीकाशीजी में देव दर्शन करके परमहंसजी अपने भक्तों के साथ श्रीवृन्दावन पहुँचे। वृन्दावन के प्रसिद्ध मन्दिरों और दर्शनीय स्थानों का दर्शन करके सब लोगों ने श्रीभगवान् की जन्मस्थली व्रजभूमि की परिक्रमा की। परन्तु श्रीपरमहंसजी को इतना घूमने पर भी कोई सच्चा ईश्वरभक्त नहीं मिला। इससे उन्हें बड़ा दुःख और पश्चाताप हुआ। अन्त में एक दिन परमहंसजी बाबू मथुरानाथ से बोलेः—"वृन्दावन आकर मैंने क्या किया, जैसे वहां (दक्षिणेश्वर में) इमली के वृक्ष थे वैसे ही यहां हैं, जैसे वहां पक्षी थे वैसे ही यहां हैं, जैसे

राधाकृष्ण वहाँ के थे वैसे ही यहाँ के हैं, जैसे कृष्ण वहां थे वैसे ही यहाँ हैं, तब फिर मैं इतनी दूर किस लिए आया ?

जिस समय श्री परमहंसजी ने वृन्दावन यात्रा का विचार किया था उस समय उन्होंने वृन्दावन का स्वरूप जैसा इतिहास पुराणों में वर्णन किया है वैसा समझा था। परन्तु वर्तमान वृन्दावन में तब के वृन्दावन से बहुत अन्तर आगया है। पहले यह निष्काम भक्ति और प्रेम का स्थान था, अब यह भिखमंगे साधु और दुराचारी लोगों की लीला का स्थान है। ठगों की दूकानदारी यहाँ खूब चलती है।

एक दिन श्री परमहंस देव वन में भ्रमण कर रहे थे, इसी समय उनको बुढ़िया दिखाई दी। श्री रामकृष्ण को देखते ही यह वृद्धा 'दुलारी २' कह कर उनसे लिपट गई। जैसे इनको काशी में त्रैलङ्ग स्वामीजी के दर्शन से प्रसन्नता हुई थी वैसे ही यहां पर ये इस बुढ़िया को देख कर अत्यन्त प्रसन्न हुए। जिस निष्काम प्रेम को परमहंस जी खोज रहे थे वह प्रेम इस बुढ़िया में था। इसका नाम गङ्गा माता था। बस, गङ्गा माता के दर्शन कर के रामकृष्ण के आनन्द की कुछ सीमा न रही। जितने दिन परमहंस जी वृन्दावन में रहे, गङ्गा

माता उनके साथ ही रहती रहीं। भोजन भी गङ्गामाता परमहंस देव को अपने हाथ से बना कर खिलाया करती थीं। जब कभी श्री रामकृष्ण कलकत्ता लौटने की इच्छा करते तब गङ्गा माता को बड़ा दुःख होता था। परन्तु उधर श्रीपरमहंस जी के परम भक्त बाबू मथुरानाथ को बड़ा कष्ट होने लगा। अन्त में गङ्गामाता ने यह देख कर परमहंसजी को कलकत्ता जाने की अनुमति दे दी।

धन से घृणा

तीर्थाटन के पश्चात् श्री रामकृष्ण परमहंस पहले की भाँति ही दक्षिणेश्वर में रहने लगे। कभी २ अन्य स्थानों में उपदेश दिया करते थे। परमेश्वर की लीला बड़ी अद्भुत है। सांसारिक लोग जिस योगिराज को आज तक पागल समझे बैठे थे अब उसे सब मस्तक नँवाते हैं। उसके दर्शनों के लिए लालायित रहते हैं। उसके सदुपदेश का अमृत से भी अधिक आदर करते हैं। अब श्री रामकृष्णजी के दर्शनों के लिये दूर दूर के यात्री आने लगे। बड़े बड़े साधु महात्मा दक्षिणेश्वर पर इकट्ठे होने लगे। श्री जगन्नाथजी की यात्रा करनेवाले लोग जब तक परमहंसजी के दर्शन न कर लेते थे, तब तक अपनी यात्रा अधूरी समझा करते थे। कलकत्ते के सभी लोग

इनके दर्शन यथासमय करने के लिये आते थे। बहुत-से मारवाड़ी सज्जन भी इनके भक्त हो गये थे। एक लक्ष्मीनारायण नामक मारवाड़ी की परमहंसजी पर बड़ी ही श्रद्धा होगई थी। यह मारवाड़ी बड़ा धनाढ्य था और श्रीमद्भागवत तथा गीताजी का बड़ा प्रेमी था। यह जब कभी दक्षिणेश्वर यात्रा के लिये आया करता, तब धार्मिक बातों पर कई प्रकार के शंका-समाधान में ही अपना समय लगाया करता था। श्री परमहंसजी महाराज भक्त और जिज्ञासु मनुष्यों की शंका बड़े ध्यान से मिटाया करते थे। इसी प्रकार कई बार शंका समाधान करने पर लक्ष्मीनारायण को यह निश्चय हो गया कि परमहंसजी कोई असाधारण योगी हैं। एक दिन सेठ लक्ष्मीनारायण ने देखा कि परमहंसजी के बिछाने की चद्दर फट गई। यह देखकर लक्ष्मीनारायण ने नई चद्दर लाकर देने की इच्छा प्रकट की। परन्तु परमहंसजी ने बड़े सन्तोषपूर्वक उन्हें उत्तर दिया कि 'अभी यह चद्दर कुछ और काम दे सकती है। जब यह काम की न रहेगी तब मन्दिरवाले स्वयं मुझे दूसरी चद्दर देंगे। आप कुछ चिन्ता न कीजिये।' यह सुन कर लक्ष्मीनारायण कहने लगे कि मन्दिराध्यक्ष बड़े असावधान हैं जो इन बातों का पूरा ध्यान नहीं रखते, वे साधु

महात्माओं की मान-मर्यादा से परिचित नहीं जान पड़ते हैं। महात्मा लोगों को जब कोई ऐसी वस्त्रादि की चिन्ता रखनी पड़ती है तो उनकी तपस्या में बड़ा विघ्न होता है। इसके सिवाय धनी पुरुषों का यह धर्म है कि वे साधु महात्माओं के लिये कोई स्थायी प्रबन्ध कर दें जिससे उन्हें ऐसी चिन्ताओं का सामना न करना पड़े। यदि महाराज की आज्ञा हो तो मेरी यह इच्छा है कि १००००) रुपये के कम्पनी के काग़ज़ खरीद कर आपके नाम से रख दूँ। इसका ब्याज ४०) रुपया मासिक होगा जिससे आपका सब काम होजाया करेगा। सेठ लक्ष्मीनारायण की इस बात से परमहंसजी को बड़ा दुःख हुआ और वे कहने लगे कि "तुम मुझे अर्थ के लोभ में डाल कर अनर्थ के कुएँ में क्यों डालना चाहते हो। तुम नहीं जानते अर्थ परमार्थ में कण्टक स्वरूप है। क्या तुम कह सकते हो कि धन से परमार्थ लाभ होताहै ? नहीं, कभी नहीं। अर्थ जड़ पदार्थ है उसके द्वारा केवल जड़ पदार्थ की ही प्राप्ति हो सकती है। यह ठीक है कि मनुष्य को जीवन-यात्रा के लिए जड़ पदार्थों की भी अपेक्षा होती है। परन्तु श्री काली माता की कृपा से मेरा काम यों ही चल जाता है। फिर मैं धन-सञ्चय करके क्या करूँ। तुम समझते होगे कि रानी रासमणि मुझे भोजन देती है क्योंकि मैं उनके देवालय

में रहता हूँ। अज्ञानी लोग ऐसा समझते हैं, परन्तु वास्तव में बात कुछ और ही है।" इसके आगे परमहंसजी ने कहा—"जगत् के सब जड़ पदार्थ जड़ पदार्थ के ही सहायक हो सकते हैं, चैतन्य के साथ केवल उनका आधार आधेय सम्बन्ध है। अर्थ से केवल शरीर की पुष्टि हो सकती है, क्योंकि शरीर जड़ परमाणुओं से बना है। चैतन्य के साथ अर्थ का कोई सम्बन्ध समझ में नहीं आता, तो फिर तुम उन का सम्बन्ध स्थापित करने की बातें क्यों करते हो। मेरा विचार तो यह है कि जिस वस्तु के कारण सारात्सार वस्तु (परब्रह्म) से वञ्चित होना पड़ता है उससे सदा सावधान रहना प्रत्येक परमार्थी का मुख्य कर्तव्य है। इसके सिवाय आत्मज्ञान चाहनेवाले मनुष्यों का पहला कर्तव्य यह है कि वे 'अहम्' भाव दूर करने का प्रयत्न करें क्योंकि जब तक अहंकार का नाश नहीं होता तब तक अज्ञान का परदा कदापि नहीं दूर हो सकता। इस "अहम्" वृक्ष की जड़ काटने के लिए अनेक साधनों की आवश्यकता पड़ती है। किन्तु तुम श्रीमद्भागवत के पण्डित होकर मुझे वह वस्तु दे रहे हो जिससे अहंकार की दिन-दूनी रात-चौगुनी वृद्धि हो। वेद भगवान् कहते हैं कि ईश्वर मनुष्य की बुद्धि तथा मन के अगोचर है। यह सच है किन्तु इसका

तात्पर्य्य यह है कि परब्रह्म विषयात्मक मन तथा बुद्धि से परे है, विषय-विकार-रहित अर्थात् शुद्ध बुद्धि से परे नहीं । इसीलिये मन को शुद्ध करने के लिये मैंने नाना प्रकार के क्लेश सहन किये हैं। 'अहम्' भाव को दूर करने के लिए मैंने सब प्रयत्न किये तथापि अब तक इसे भली भाँति दूर नहीं कर सका। आज भी मुझे 'मैं' और 'तुम' का ज्ञान है; आज भी मैं धन सम्बन्धी कथोपदेश में लिप्त हूँ; कहाँ तक कहूँ आज तक मेरा मन विषयों से दूर नहीं हुआ। इस दशा में मुझे धन देकर मेरा सर्व-नाश मत करो। मुझे तुम धन क्यों देना चाहते हो ? मैं न साधु हूँ न महन्त हूँ और ना ही मैं कोई सिद्ध पुरुष हूँ। मतलब यह है कि मैं कुछ भी नहीं हूँ। न मैं पण्डित हूँ न धनवान् का पुत्र हूँ। यहाँ तक कि इस समय मैं ब्राह्मण भी नहीं हूँ। मैंने कई बार यज्ञोपवीत पहना, परन्तु न जाने वह कहाँ खो जाता है, फिर मुझे धन देने से क्या लाभ ? धन दान करने के लिए सुपात्रों की कमी नहीं। तुमको चाहिये कि तुम उनकी सहायता करो जिससे तुमको बड़ा फल होगा।"

श्री परमहंसजी महाराज का यह उपदेश सुन कर सेठ लक्ष्मीनारायण बोलेः—'महाराज, मैं आपकी इस बात का अनुमोदन नहीं कर सकता कि आपका मन

विषय-वासनाओं में फँसा हुआ है। मैंने भली-भाँति समझ लिया कि आप क्या हैं। यदि मैंने यह न समझ लिया होता तो यह प्रस्ताव कदापि न करता। आपका मन विषय-वासना से सर्वथा परे है। जिस प्रकार तेल पानी के साथ होते हुए भी उससे अलग रहता है, उसी प्रकार आपका मन विषयों में रहते हुए भी उनमें लिप्त नहीं है। यह सुन कर श्री परमहंस महाराज बोले:—"यद्यपि तेल और जल तुरन्त नहीं मिल जाता तथापि कुछ समय के बाद दोनों एक हो जाते हैं। इसी प्रकार विषय के साथ बहुत समय तक सम्बन्ध रखने से मन उसमें (विषय में) अवश्य लिप्त हो जाता है।"

जब सेठ लक्ष्मीनारायण ने यह जान लिया कि परमहंस धन से घृणा करते हैं और इस सम्बन्ध में इनसे विशेष कहना व्यर्थ है, तब उन्होंने कहा:—'महाराज, यदि आप अपने नाम से धन का कुछ भी सम्बन्ध नहीं रखना चाहते तो मैं आपके कुटुम्ब के किसी और व्यक्ति के नाम यह द्रव्य लगा दूँगा। मैं समझता हूँ कि अब आप इसमें कोई आपत्ति न करेंगे।" परन्तु श्री परमहंसजी ने इस बात से भी इन्कार कर दिया और कहा:—"इस प्रकार भी मेरे मन पर धन की छाया अवश्य पड़ेगी। यद्यपि काग़ज़ दूसरे के नाम ख़रीदे जाएँगे तथापि मुझे

यह ज्ञान सदैव रहेगा कि यह धन वास्तव में मेरा ही है और यह ज्ञान धीरे-धीरे 'अहम्' भाव को दृढ़ करेगा जिससे मेरे मार्ग में बड़ा कष्ट होगा। इसलिए कृपा करके मुझे इस विपत्ति से बचाइए।'

श्री परमहंसजी के यह वचन सुन कर लक्ष्मीनारायण बड़ी चिन्ता में होकर कहने लगे कि,—"महाराज यह धन तो आपको स्वीकार करना ही पड़ेगा। मैं इसके लिए मानसिक संकल्पकर चुका हूँ। संकल्प की हुई वस्तु को अपने पास रखना मेरा धर्म नहीं। इसलिए यह धन मैं आपको अवश्य ही दूँगा फिर आपकी इच्छा हो जैसा करें।'

बस, ज्यों ही लक्ष्मीनारायण ने यह आग्रह के वचन निकाले, त्योंही परमहंसजी महाराज ज़ोर-ज़ोर से रोने लगे और श्री काली माताजी को याद करके कहने लगे— 'माँ! ऐसे मनुष्यों को मेरे पास क्यों आने देती हो जो मुझे तुम से अलग करना चाहते हैं। माँ, निस्सन्देह यह लोग मेरे परम शत्रु हैं। इसी प्रकार 'माँ-माँ' पुकारते हुए रामकृष्ण ने समाधि लगाली। यह लीला देख कर लक्ष्मीनारायण घबड़ाये और क्षमा माँगने लगे। अन्त में श्री रामकृष्णजी ने लक्ष्मीनारायण को मीठे शब्दों में सांत्वना दी।

बड़ा खेद है कि भारतवर्ष, जहाँ पहले ऐसे ऐसे तपस्वी

योगी हो चुके हैं, अब बिल्कुल शून्य हो गया। श्रीराम-कृष्ण और रामतीर्थ की तुलना के लिए एक भी महात्मा यहाँ नहीं रह गया जिससे संसार के दुःखित मनुष्य उनकी शरण में जाकर और उनका उपदेशामृत पीकर शान्ति प्राप्त कर सकें। आज जहाँ देखते हैं, गांजा और चरस की दम लगानेवाले मूर्खानन्द बाबाजी बैठे मिलते हैं। ज्ञान, वैराग्य का लेशमात्र भी नहीं जानते। दिन रात अपने भोले और मूर्ख भक्तों से सुलफे के लिये टके ठगा करते हैं। बस, जो सबसे अधिक सुलफा पिलाता है वही सर्वश्रेष्ठ भक्त है। ज्ञान के अभिलाषुक मनुष्यों को बाबाजी की धूनी पर बैठने के लिये स्थान भी नहीं मिलता। हे भगवन्, वह दिन कब लाओगे जब कि पुराने जमाने के समान आपके लोक का रहस्य जानने-वाले महात्मा हमें यहीं, इस भारत की पवित्र वसुन्धरा पर मिलेंगे और सदुपदेश देंगे ?

केशवचन्द्र सेन से भेंट।

श्री केशवचन्द्र सेन ब्रह्मसमाज की 'नवविधान शाखा' के नेता थे। ये बंगाल के प्रसिद्ध समाज-सुधारक थे। राजा राममोहनराय और श्री केशवचन्द्र सेन एक कोटि के मनुष्य समझे जाते हैं। उन दिनों श्री केशवचन्द्र सेन की कीर्ति पताका सारे भारतवर्ष में लहरा रही थी।

अँगरेज़ी के जाननेवालों में तो इनका अद्भुत प्रभाव जमा हुआ था। श्री परमहंसजी के पास भी इनकी प्रशंसाएँ पहुँचने लगीं। परमहंसजी के बहुत-से शिष्य केशवचन्द्र की बाबत इनके पास चर्चा किया करते थे। अन्त में श्री रामकृष्णजी ने यह निश्चय किया कि केशव-चन्द्र सेन को देखना चाहिये। यह सोच कर अपने एक शिष्य की गाड़ी में बैठ कर श्री परमहंसजो केशवचन्द्र सेन से मिलने चले। श्री केशवचन्द्र के उद्यान में पहुँच कर परमहंसजी ने वहाँ बैठे हुए सब लोगों से पूछा—'क्या आप सब लोगों को ईश्वर का दर्शन हुआ है ? वह दर्शन किस प्रकार का है ? यही जानने के लिए मैं यहाँ आया हूँ।" यह कह कर परमहंसजी प्रेम में मग्न होकर 'के जाने काली के मन' इत्यादि गाने लगे और समाधिस्थ हो गये। श्री परमहंसजी को उस दशा में देख कर केशवचन्द्र तथा उनके सब शिष्य लोग चकित हो गए। थोड़ी देर में समाधि खुली और श्री रामकृष्णजी ने अपने आपही यह कहना शुरू कर दिया—"पाँच अन्धे मनुष्य हाथी देखने गए। आँख से तो देख नहीं सकते थे इसलिये हाथों से टटोल टटोल कर चले आये। किसी ने सूँड पर हाथ डाला, किसी ने पेट टटोला, किसी ने पैर को छूआ, और सब लोग लौट आये। जब वे लोग

आपस में आकर बात चीत करने लगे तब तो बड़ा झगड़ा हुआ। एक कहता है हाथी लट्ठ-सा होता है, दूसरा कहता है नहीं वह तो घड़े जैसा होता है। यह सुन कर तीसरा अन्धा बोलता है 'वाहजी, हाथी ऐसा होता जैसा 'खम्भा'। सब कहते थे हमने हाथी देखा है,हमने हाथी देखा है। इसी समय एक सुआंखा मनुष्य आगया और सब अंधों से कहने लगा—'क्योंजी आपस में क्यों झगड़ रहे हो।' अन्धों ने सारा हाल कह सुनाया और विनयपूर्वक कहा कि आप हमारे इस झगड़े को निपटा दीजिये।' यह सुन कर उस सुलोचन पुरुष ने कहा—तुममें से किसी ने हाथी को नहीं देखा है। हाथी खम्भा सा नहीं होता, उसके पैर खम्भे से होते हैं और हाथी घड़ा-सा नहीं होता किन्तु उसका पेट घड़ा-सा होता है। हाथी लट्ठ-सा भी नहीं होता किन्तु उस की सूँड लट्ठ-सी होती है। इसी प्रकार जिनको ईश्वर सम्बन्धी एक ही विषय का ज्ञान हुआ है वे भी आपस में अन्धों की भाँति रहते हैं। इसी प्रकार कई दृष्टान्तों द्वारा श्री परमहंस ने ईश्वर की एकता और सर्वव्यापकता सिद्ध की।

परमहंस देव से वार्तालाप होने पर केशवचन्द्र बड़े प्रसन्न हुए और बाद में भी प्रायः वे परमहंसजी के दर्शन के लिए दक्षिणेश्वर जाया करते थे। तथा

श्री परमहंसजी को अपने मकान पर लाकर भी उनके सदुपदेश सुना करते थे। ब्रह्म-समाज के वार्षिकोत्सव पर एक दिन केशवचन्द्र सेन अपने शिष्य मण्डल के साथ श्री रामकृष्ण परमहंस का उपदेशामृत पान अवश्य किया करते थे।

विद्यासागर से भेंट।

अब हम पाठकों को बंगाल के एक अन्य महापुरुष के साथ जो श्री परमहंस का वार्तालाप हुआ था, उसका सारांश देते हैं।

बाल्यावस्था में ही श्री रामकृष्णजी ने ईश्वरचन्द्र का यश सुन लिया था। परमहंसजी ऐसे महात्माओं से बात-चीत करने को बड़े उत्सुक रहते थे। एक दिन इन्होंने अपने एक शिष्य से कहा कि 'ईश्वरचन्द्र विद्यासागर से मिलना चाहिए।' बस, इतना कहते ही शिष्य गाड़ी ले आए और श्री रामकृष्णजी विद्यासागर से मिलने गए। गाड़ी में बैठे बैठे परमहंसजी बोलते जाते थे 'माँ, विद्यासागर को देखने जाता हूँ। परन्तु माँ, मुझमें कुछ भी विद्या नहीं है, मैं तो लिखना पढ़ना भी नहीं जानता' यह कहते कहते परमहंसजी समाधिस्थ हो गये। थोड़ी देर में गाड़ी श्री विद्यासागर के मकान के सामने जा खड़ी हुई। इनके भक्त इन्हें गाड़ी से उतार कर श्री विद्यासागर

के पास ले गए। विद्यासागर ने परमहंस का परिचय पाते ही उठ कर बड़े प्रेम और आदर से इनका स्वागत किया। परमहंसजी थोड़ी देर तक विद्यासागर के मुँह की ओर टकटकी लगाये देखते रहे। उनके मधुर तथा बालक के समान चेहरे पर मुस्कराहट की लहरें दिखाई दे रही थीं। अन्त में कुछ जलपान करके वार्तालाप प्रारम्भ हुआ।

परमहंस—आज सौभाग्य से मुझे सागर का दर्शन एक बार हो ही गया। आज तक मैंने बहुत से बम्बे, नहरें, नाले, नदी और नद देखे थे।

विद्यासागर—पहले आप मीठे पानी के पास थे अब खारी पानी के पास आ गये हैं। यहाँ से और क्या, कुछ खारा पानी घर ले जाइये।

परमहंस—नहीं पण्डितजी, आप खारे समुद्र कभी नहीं हो सकते। आप क्षीरसागर हैं, क्योंकि आप अविद्या-सागर नहीं हैं आप विद्यासागर हैं।

विद्यासागर—आप चाहे जैसा कहिये। (हँसी)

इसके पश्चात् श्री रामकृष्णजी ने वेदान्त विद्या पर बहुत कुछ कहा। कहीं कहीं बीच में श्री विद्यासागर भी बोलते थे। यह वार्तालाप शास्त्र से सम्बन्ध रखता है इसलिये यहाँ नहीं दिया।

श्री रामकृष्ण और स्वामी विवेकानन्द

पाठकों ने स्वामी विवेकानन्द का नाम सुना होगा। ये एक उच्चकोटि के साधु हो चुके हैं। स्वामी विवेकानन्दजी को जो अध्यात्म-ज्ञान हुआ वह सब श्री रामकृष्ण परमहंसजी की कृपा से ही हुआ था।

स्वामी विवेकानन्दजी का पहला नाम नरेन्द्रनाथ था। इन्होंने एन्ट्रेन्स की परीक्षा पास करली थी। नरेन्द्रनाथ को प्रारम्भ से ही ईश्वरीय ज्ञान प्राप्त करने का बड़ा अनुराग था। प्रायः यह देखा जाता है कि अँग्रेज़ी शिक्षा पानेवाले विद्यार्थियों की रुचि विज्ञान आदि में बड़ी रहती है। यह लोग हर एक वस्तु का मर्म जानने के लिए उत्सुक रहते हैं। बस, श्री विवेकानन्द (उस समय नरेन्द्रनाथ) भी इन विचारों में संलग्न रहते थे। परन्तु आधिभौतिक पदार्थों का रहस्य जानने की इच्छा से पहले ही, उन्हें आध्यात्मिक ज्ञान की इच्छा हुई। जब विवेकानन्द को यह बात मालूम हो जाती कि कोई धर्म-प्रचारक आया है तब ये एक दम उसके डेरे पर पहुँच जाते थे और धर्म तथा परलोक के सम्बन्ध में कई प्रकार की शंकायें करने लगते थे। उपदेशक लोग नरेन्द्रनाथ की शंकाओं का यथाशक्ति समाधान करते थे, परन्तु इन्हें साधारण समाधानों से पूरा सन्तोष नहीं होता था। नरे-

न्द्रनाथ ऐसे मनुष्य की खोज में दिन रात रहा करते थे जिसको ईश्वर के विषय में कुछ सच्चा ज्ञान हो। यह सोचा करते कि वह मनुष्य ईश्वर की बाबत कुछ नहीं बतला सकता जिसने ईश्वर का दर्शन एक बार भी न किया हो। इसलिए ऐसे मनुष्य का दर्शन करना चाहिए जिसने उस प्रभु का साक्षात्कार भी किया हो। परन्तु इस संसार में ऐसे मनुष्यों का मिलना बहुत ही कठिन है। तथापि श्री नरेन्द्रनाथ अपने विश्वास पर डटे रहे और सब व्याख्यान-दाताओं तथा उपदेशकों से ईश्वर के स्वरूप जानने की बातें किया करते थे। उन्हीं दिनों श्री रामकृष्णजी महाराज का यश सारे देश में फैल रहा था। श्री रामचन्द्र दत्त परमहंसजी के बड़े भक्त थे। नरेन्द्रनाथ और रामचन्द्र दत्त में कुछ परस्पर सम्बन्ध था। एक दिन रामचन्द्र ने नरेन्द्रनाथ से कहा कि 'तुम दिन रात धर्म धर्म करते फिरते हो, क्या तुम्हें ब्रह्म-समाज के जलसों में घूमने से धर्म मिल जायगा। तुम यदि धर्म के रहस्य को समझना चाहते हो तो एक दिन हमारे साथ योगिराज श्री रामकृष्ण के पास चलो। वहाँ तुम्हारी इच्छानुसार तुम्हें धर्मोपदेश मिलेगा।' बस, इतना सुनते ही नरेन्द्रनाथ रामकृष्णजी के दर्शन करने को दक्षिणेश्वर यात्रा के लिये तैयार हो गये। जब नरेन्द्रनाथ दक्षिणेश्वर पहुँच कर श्रीरामकृष्ण

की कुटी में प्रवेश करने लगे तो परमहंस देव इनको देख कर प्रेम में मग्न होगये और उठ कर इनका स्वागत किया। श्रीरामकृष्णजी महाराज नरेन्द्रनाथ से इस भाँति वार्तालाप करने लगे जैसे कि इन दोनों का कोई पहले का परिचय हो। श्रीपरमहंस देव नरेन्द्रनाथ से बोलेः—"तुम तो स्वयं नारायण हो, जीव मात्र का मंगल करने के लिये तुमने जन्म लिया है, फिर यहाँ आने में तुम ने इतना विलम्ब क्यों किया। संसारी मनुष्यों से बातचीत करते २ मैं उकता गया। मैं तुम्हारे लिये बहुत व्यग्र था। अब तुमसे वार्तालाप करके आनन्दित होऊँगा"। यह सुन कर नरेन्द्रनाथ बड़े हैरान हुए और मन में सोचने लगे कि रामचन्द्र मुझे कहाँ ले आए। यह मनुष्य तो पागल मालूम होता है।

जिस समय नरेन्द्रनाथ ने परमहंस जी की बातें सुनी तो उन्होंने इनको सिड़ी ही समझा था, परन्तु उनके चित्त में रामकृष्णजी के लिये उसी समय एक विशेष प्रेम और आदर पैदा होगया था। नरेन्द्रनाथ जब सन्यासी विवेकानन्द होगये थे, तब उन्होंने स्वयं अपने एक इष्ट-जन से कहा था 'रामकृष्ण अद्भुत सिड़ी है। उनका आकर्षण भी वैसा ही अद्भुत है जैसा उनका प्रेम। एक

मनुष्य को सिड़ी भी समझना और उस पर मुग्ध भी होना निस्सन्देह एक अद्‌भुत बात है।

इसी प्रकार वार्तालाप करते हुए श्रीपरमहंस देव नरेन्द्रनाथ को लेकर अपने आसन पर बैठ गये। बैठ जाने पर नरेन्द्रनाथ रामकृष्णजी से कहने लगे—'महाशय! आपको ईश्वर में विश्वास है?' श्रीरामकृष्ण ने उत्तर दिया—'हाँ'! यह सुन कर नरेन्द्रनाथ ने पूछा—'क्या आपने ईश्वर को देखा है?' परमहंस देव ने नरेन्द्रनाथ का हाथ पकड़ कर उत्तर दिया 'हाँ देखा है, जिस प्रकार तुम को देख रहा हूँ उसी प्रकार मैं उसे भी देखता हूँ और यदि तुम भी देखना चाहते हो, तो उसी प्रकार देख सकते हो'।

नरेन्द्रनाथ ने जब रामकृष्णजी की बातें सुनीं तो एक दम उनकी आँखें खुल गईं। उनके हृदय में जो अनेक प्रकार के भ्रम उठ रहे थे उनमें शान्ति होने लगी। उन्हें यह जान कर बड़ा आनन्द हुआ कि मैं भी ईश्वर को देख सकता हूँ। नरेन्द्रनाथ तो बहुत समय से ऐसे महात्मा की खोज में थे जो उन्हें ईश्वर से मिलने का उपाय बतला सके। वास्तव में अभी तक उन्हें पूरा विश्वास भी न था कि ईश्वर है, क्योंकि उन्हें जो अब तक उपदेशक और धर्म्म-प्रचारक मिले, वे केवल जबानी जमा-खर्च करने वाले

मिले। ऐसे मनुष्यों का एक नरेन्द्रनाथ जैसे प्रतिभाशाली जिज्ञासु पर क्या प्रभाव पड़ सकता था। निदान उनके सन्देहों का निवारण किसीसे भी नहीं हुआ। एक भी मनुष्य नरेन्द्रनाथ को ऐसा नहीं मिला था जिसने यह कहा हो कि, 'मैंने ईश्वर को देखा है और तुम भी देख सकते हो।' बस, यह उत्तर उन्हें श्रीपरमहंसजी के पास ही मिला। अब नरेन्द्रनाथ के हर्ष की क्या सीमा थी!

अन्त में श्रीरामकृष्णजी ने नरेन्द्रनाथ को कोई गाना सुनाने के लिये कहा। नरेन्द्रनाथ अब तक गाना बहुत कम जानते थे, परन्तु इनका स्वर बहुत मीठा था। बाद में तो इनको गाने का अभ्यास भी बहुत अच्छा हो गया था।

श्रीपरमहंसजी की आज्ञा से नरेन्द्रनाथ ने एक गाना गा कर सुनाया। इस गाने को नरेन्द्रनाथ गा ही रहे थे कि श्रीरामकृष्ण समाधिस्थ हो गए। परमहंसजी की यह लीला देख कर नरेन्द्रनाथ को बड़ा विस्मय हुआ और उनके चित्त में अनेक प्रकार के संकल्प-विकल्प पैदा होने लगे।

जब श्री नरेन्द्रनाथ दो-तीन गायन गा चुके तो उन्होंने वहां से चलने की इच्छा प्रकट की। इस समय परमहंसजी उनका हाथ पकड़ कर 'कहने लगे—"फिर आना, आओगे न? मैं तुम से मिलने के लिये बड़ा

उत्सुक रहता हूँ।' "जी हाँ, आने की चेष्टा करूँगा" यह कह कर नरेन्द्रनाथ वहाँ से चल पड़े।

इस समय तक श्रीनरेन्द्रनाथ को यह पूरा विश्वास नहीं हुआ था कि रामकृष्ण एक असाधारण योगी हैं क्योंकि एक सम्भ्रान्त सांसारिक मनुष्य के लिये यह बहुत कठिन है कि वह एक-दम किसी साधु को ईश्वर से सम्बद्ध मान ले। दूसरे अँगरेज़ी शिक्षा का प्रभाव भी बड़ा विचित्र और भयानक होता है। बहुत से अँगरेज़ी सभ्यता की डींग मारनेवाले तो सिवाय प्रत्यक्ष पदार्थ के किसी वस्तु का अस्तित्व ही नहीं मानते। यहाँ तक कि कोई कोई साहब तो अपने बाप के होने में भी, यदि आँखों से न देखा हो तो, सन्देह करने लगते हैं। जो कुछ उनकी स्थूल बुद्धि में नहीं आता उसे वे कभी भी स्वीकार नहीं करेंगे। ऐसी अवस्था में यदि श्री नरेन्द्रनाथ को पहले दर्शन में कुछ सन्देह रह गए हों, तो कुछ अचरज की बात नहीं। परन्तु सन्देहों के होते हुए भी नरेन्द्रनाथ का मन परमहंसजी की ओर बिल्कुल खिंच गया था। अपने चित्त की यह दशा देख कर नरेन्द्रनाथ भी बड़े चकित थे। अन्त में नरेन्द्रनाथ को यह निश्चय होगया कि अवश्य श्री रामकृष्ण में कोई असाधारण शक्ति है जिससे मेरा चित्त इनकी ओर खिंचा जा रहा है।

जब नरेन्द्रनाथ को अवकाश मिलता तभी यह श्री रामकृष्ण के दर्शन करने के लिए जाया करते थे। परमहंसजी नरेन्द्रनाथ को अनेक उपदेश सुनाया करते थे। नरेन्द्रनाथ इन उपदेशों को बड़े प्रेम से सुना करते थे। बस, इन्हीं उपदेशों ने नरेन्द्रनाथ को विवेकानन्द बना कर सारे संसार में विख्यात् किया। इन्हीं उपदेशों के कारण स्वामी विवेकानन्द ने अमेरिका जैसे प्रत्यक्षवादी देश में वेदान्त-विद्या का उपदेश दे कर अध्यात्म-ज्ञान का प्रचार किया। यदि स्वामी विवेकानन्द को श्री राम-कृष्णजी जैसा योग्य गुरू नहीं मिलता तो शायद वे भ्रमों में ही रह जाते। परन्तु नरेन्द्रनाथ का शुद्ध हृदय देख कर परमात्मा ने उन्हें योग्य गुरु से मिला दिया। पाठको! सत्संग का महत्त्व देखिए। जिस नरेन्द्रनाथ ने पहले रामकृष्णजी को सिड़ी समझा था, वह आज इनको अपने गुरुदेव मानने लगे और इनके उपदेशों का सर्वत्र प्रचार करने लगे।

कुछ समय में स्वामी रामकृष्ण परमहंसजी का विवेकानन्द से इतना प्रेम हो गया कि यदि विवेकानन्द किसी कारण परमहंसजी से ठीक समय पर मिलने नहीं आते तो परमहंसजी स्वयं विवेकानन्दजी के स्थान पर जा कर मिलते थे। परमहंसजी विवेकानन्द को देखते ही प्रेम में

मग्न होजाते थे और उनसे वार्तालाप करते करते समाधिस्थ हो जाते थे। सच है 'गुणी गुणं वेत्ति न वेत्ति निर्गुणः' अर्थात् गुणी मनुष्य ही गुण का आदर कर सकता है गुणहीन मनुष्य नहीं कर सकता।

श्रीरामकृष्ण वाक्सुधा

प्यारे पाठको! यह बात प्रायः सभी जानते हैं कि वेदान्त-शास्त्र बहुत ही कठिन है। बड़े-बड़े वेदान्ताचार्य वेदान्त-विद्या के असली रहस्य से वञ्चित रहते हैं। वास्तव में यह विद्या ऐसी है कि जब तक मनुष्य अपनी चित्त वृत्ति को शुद्ध बना कर इसका यथाविधि मनन नहीं करता तथा इसके उपदेशों को आचरण में नहीं लाता, तब तक इसका ज्ञाता नहीं बन सकता। हमारे श्रीपरमहंसजी ने वेदान्त की पुस्तकें नहीं पढ़ी थीं। इन्होंने किसी वेदान्त-भूषण महामहोपाध्याय को अपना गुरू नहीं बनाया था। ये हिन्दी से भी परिचित नहीं थे, संस्कृत तो कुछ भी न जानते थे। सुनते हैं कि थोड़ी-बहुत बंगला भाषा लिखना-पढ़ना जानते थे। बस, इतनी ही इनकी पढ़ाई थी। परन्तु वेदान्त जिस प्रकार श्रीपरमहंसजी ने समझा था उस प्रकार किसी बिरले ने ही समझा होगा। हम आप के लिये परमहंसजी के कुछ उपदेश देते हैं। आप देखेंगे कि श्री परमहंसजी ने वेदान्त की कैसी-कैसी

जटिल समस्याओं को किस सुगमता से समझाया है। इन उपदेशों से ज्ञानहीन बालक भी बहुत-कुछ समझ सकते हैं :—

संसार के उद्धार करनेवाले।

(ऊँची दीवारों से घिरा हुआ बाग)

एक बाग ऊँची दीवारों से चार ओर घिरा हुआ था। बाहर के आदमी यह कुछ नहीं जानते कि ब्रह्म क्या है। एक बार चार आदमियों ने इरादा किया कि देखें इसके भीतर क्या है और वे ऊपर चढ़ने की सीढ़ी अपने साथ ले गए। पहले एक आदमी दीवार पर चढ़ा और ज्योंही वह चोटी पर पहुँचा खुश होकर चिल्लाया 'अहा हा! वाह' और यह कह कर भीतर की ओर कूद पड़ा। इसी तरह दूसरा आदमी भी चढ़ा और वह भी खुश होकर भीतर की ओर कूद गया। ऐसे ही तीसरे ने भी किया, परन्तु चौथा मनुष्य चढ़ा तो उसने वहाँ के मधुर फलों को और अलौकिक सुन्दरता को देख कर कहा कि यदि मैं कूद जाऊँगा तो केवल मैं ही लाभ उठाऊँगा। मुझे यह आनन्द अकेले ही नहीं भोगना चाहिए किन्तु अपने और साथियों को भी यहाँ का समाचार सुनाना चाहिए, जिससे उन लोगों का भी भला

हो । यह सोचकर वह सीढ़ी से बाहर की ओर उतर आया और उसने बाहरवालों को वहाँ का सब हाल सुना दिया । इसी प्रकार ईश्वर भी ऐसी ऊँची दीवारों से घिरा हुआ है । वह एक रमणीय बाग़ है । जो कोई उस को देखता है, अपने आप को बिल्कुल भूल जाता है और उसे देखने से उसको (मनुष्य को) इतना आनन्द होता है कि वह उसीमें डूब जाना चाहता है और ऐसे ही सब साधु-सन्त होते हैं जो उसमें कूद कर डूब जाते हैं । परन्तु मनुष्यों को तारनेवाले वे ही होते हैं जो ईश्वर को देख कर भी निर्वाण को नहीं चाहते और जरा-मरण व्याधि के दुःखों को सह कर लोगों के उद्धार के लिए फिर संसार में रह कर उनको ज्ञान और प्रेम सिखलाते हैं ।

भक्ति और प्रेम ।

(नारदजी और भक्ति)

एक बार नारदजी ने अहंकार से यह सोचा कि मेरे बराबर नारायण का प्रेमी और भक्त कोई नहीं है । नारायण तो अन्तर्यामी थे । उनको यह बात मालूम हो गई । उन्होंने नारद मुनि से कहा, चलो कुछ दूर टहल आवें । थोड़ी दूर जाकर क्या देखते हैं कि एक ब्राह्मण सूखी घास खा रहा है और उसकी कमर में एक तलवार

बंधी है। नारदजी उसको देखते ही जान गए कि यह वैष्णव है क्योंकि वैष्णव लोग जीव-हिंसा करना तो अलग रहा, हरी घास को भी उसमें जीव समझ कर नहीं खाते और अपना पेट सूखी घास से भर लेते हैं। परन्तु नारद-जी को तलवार देख कर बड़ा अचरज हुआ, क्योंकि वैष्णव के पास तलवार का होना आश्चर्य की बात ही है। नारद जी इस बात को नहीं समझे और नारायण से पूछने लगे 'भगवन्! यह क्या बात है कि वैष्णव के पास, जो हरी घास को सजीव समझता है, हथियार हो!' नारायण ने कहा, नारद तुम इस बात को वैष्णव से आप पूछ लो। नारद जी उस ब्राह्मण के पास गए और पूछने लगे कि आप तो हिंसा किसी प्रकार की नहीं करते हैं, आपके पास यह तलवार कैसे? ब्राह्मण बोला कि, यह तलवार यदि तीन बदमाश मुझे कहीं मिल जावें तो उनको दण्ड देने के लिये है। नारदजी ने कहा कि वे कौन हैं। ब्राह्मण ने कहा, एक तो दुष्ट अर्जुन है जिसने मेरे इष्टदेव भगवान् श्रीकृष्ण को कुरुक्षेत्र की लड़ाई में अपना रथ हाँकनेवाला बनाया। नारदजी ने पूछा, दूसरा कौन है? नारायण ने कहा, दूसरी भीलनी चुड़ैल है जिसने नारायण को अपना झूठा खिलाया। नारदजी ने कहा, तीसरा कौन है? ब्राह्मण ने कहा, तीसरा हत्यारा नारद है। नारदजी ने पूछा, क्यों?

उसने क्या किया ? ब्राह्मण ने कहा, देखते नहीं उसके ढीठपने को ? रात-दिन वह नारायण को भजन और वीणा सुनाता है और दम नहीं लेने देता, इसके कारण नारायण को चैन नहीं मिलता, उसको नारायण का कुछ भी ख्याल नहीं है। नारदजी को उस ब्राह्मण की भक्ति और प्रेम देख कर बड़ा आश्चर्य हुआ। उनका सब अहंकार दूर हो गया और उस दिन से उनके चित्त में यह ख्याल न रहा कि मैं नारायण का बड़ा भक्त हूँ।

(ज्ञानी और भक्त में भेद।)

एक ज्ञानी और एक भक्त जंगल में चले जाते थे। रास्ते में उनको एक बाघ मिला। ज्ञानी बोला, 'भाग कर क्या करें, ईश्वर हमको ज़रूर बचावेगा।' भक्त बोला, नहीं भाई भाग जायँ, जिस काम को हम आप कर सकते हैं उसके लिये ईश्वर को क्यों दुःख दें।

ब्रह्म, माया, जीव।

(रामजी, सीताजी और लच्मणजी)

जब रामजी बनवास को गए तो रामजी के पीछे २ सीताजी जाती थीं और सीताजी के पीछे २ लच्मणजी जाते थे। रामजी आगे रहते थे, सीताजी बीच में रहती थीं और लच्मणजी सबसे पीछे रहते थे। जब लच्मणजी यह चाहते थे कि रामजी का दर्शन मुझको मिले तब वे

सीताजी से प्रार्थना करते थे कि, सीताजी आप थोड़ा हट जायँ तो मैं रामजी के दर्शन् करूँ । और जब सीताजी लक्ष्मणजी की प्रार्थना सुन कर हट जाती थीं तो रामजी का दर्शन भली-भाँति लक्ष्मणजी को मिल जाता था। इसी प्रकार ब्रह्म, माया और जीव हैं। जब तक माया जो जीव और ब्रह्म के बीच में है, हट नहीं जाती तब तक जीव ब्रह्म का दर्शन नहीं पाता।

ईश्वर पर भरोसा

(बाप और बेटे)

एक आदमी अपने दो लड़कों को साथ लिये जाता था। एक लड़का उसकी गोद में था दूसरा उसका हाथ पकड़े चला जाता था। इतने में दोनों लड़कों ने एक कनकौवा आसमान में उड़ता हुआ देखा। दोनों लड़के ताली बजा के चिल्ला उठे, अहा! क्या चिड़िया उड़ रही है! इससे यह हुआ कि उस लड़के को जो अपने बाप का हाथ छोड़ कर ताली बजाने लग गया था गिरने से चोट लग गई। परन्तु वह लड़का जो गोद में था ताली बजाने पर भी न गिरा और आराम से रहा। इसी प्रकार जो लोग ईश्वर पर पूरा भरोसा रखते हैं उनका कभी कुछ नुक़सान नहीं होता है परन्तु वे लोग जो अपनी शक्ति पर भरोसा रखते हैं प्रायः धोखा खाते हैं।

सन्यास

(स्त्री पुरुष, जो सन्यासी हो गए थे)

एक मनुष्य और उसकी स्त्री साथ ही सन्यासी हो गए और साथ ही तीर्थ-यात्रा करने लगे। एक दिन जब वे मार्ग में चले जा रहे थे तो पुरुष अपनी स्त्री से कुछ आगे बढ़ गया और उसने रास्ते में एक हीरा पड़ा हुआ देखा और यह समझ कर कि कहीं मेरी स्त्री इस को देख कर लालच में न आ जावे, धरती खुरच कर उस हीरे को मिट्टी से ढांपने लगा। इतने में उसकी सन्यासिनी स्त्री आ पहुँची और पूछने लगी कि, तुम क्या कर रहे हो। परन्तु पुरुष ने अपनी स्त्री को ठीक उत्तर नहीं दिया। सन्यासिनी ने उसके मन की बात जान कर कहा कि, यदि तुम हीरे और मिट्टी में कुछ भी भेद समझते हो, तो संसार छोड़ कर बाहर क्यों निकले हो ?

ठग वेदान्ती

(ब्राह्मण और गाय)

एक ब्राह्मण ने एक बाग़ लगाया और रात-दिन उसकी दुरुस्ती में लगा रहता था। एक दिन एक गाय उस बाग़ में घुस गई और एक आम के पौदे को खागई जिसको उस ब्राह्मण ने बड़े यत्न से लगा रक्खा था। इस पर ब्राह्मण को गुस्सा आया और गाय को इतना

मारा कि वह मर गई। ब्राह्मण वेदान्त में दम भरता था। जब उससे लोग कहते थे कि तुमने बड़ा पाप किया जो गोहत्या की तो वह कहता था कि मैंने कुछ नहीं किया, मेरे हाथ ने किया है, हाथ का देवता इन्द्र है इस लिये यह कर्म इन्द्र ने किया। इन्द्र-लोक में बैठे-बैठे इन्द्र देवता ने यह सब सुना और एक बूढ़े ब्राह्मण का रूप धारण कर के उस ब्राह्मण के पास आये और पूछने लगे, 'क्यों जी यह बाग किसका है?' ब्राह्मण ने कहा 'मेरा है।' फिर इन्द्र देवता ने कहा 'यह बाग बहुत अच्छा बना है, पेड़ इसमें बहुत अच्छी तरह लगे हुए हैं। माली इस बाग का बहुत होशियार मालूम होता है।' इस पर ब्राह्मण ने कहा—'यह मेरा ही किया समझिए। मैं सारे दिन बाग में बैठा बैठा नौकरों से काम लेता हूँ।' इन्द्र ने कहा 'यह सड़क किसने बनाई है, यह बहुत ही अच्छी बनी है।' ब्राह्मण ने कहा 'यह मेरे ही हाथ से बनी है।' तब इन्द्र ने हाथ जोड़ कर कहा 'क्योंजी अगर यह सब तुम्हारे ही करने से हुआ है तो गोहत्या का पाप मेरे सिर क्यों मढ़ते हो।'

झूठा अहंकार

(एक अहङ्कारी भण्डारी)

एक धनी मनुष्य का एक भण्डारी था जिसके पास

उसके प्रभु की कुल जायदाद और माल रहता था। जब कभी कोई उससे पूछता था कि यह माल किस का है, तो वह तुरन्त उत्तर देता था कि यह घर, यह बग़ीचा और यह माल, असबाब सब मेरा है। अहंकार में डूबा हुआ अकड़ कर चलता था। एक दिन उसने अपने मालिक के तालाब से मछली पकड़ने का विचार किया, यद्यपि उसके मालिक ने मछली पकड़ना निषेध कर रक्खा था। संयोग से जब वह मछली पकड़ रहा था तो उसका मालिक भी कहीं से उसी जगह आ पहुँचा और जब उसने अपने भंडारी की चोरी देखी, तो उसने उसको नौकरी से अलग कर दिया और उसकी बुरी गति करके जो कुछ उसने कमाया था उसे भी छीन लिया और उसको घर से निकाल दिया। यहाँ तक कि वह अपना टूटा सन्दूक़ भी अपने साथ न ले जा सका। ऐसे ही जो आदमी संसार में अपने को ईश्वर का सेवक नहीं समझता और सब कुछ ईश्वर का नहीं समझता, किन्तु अपना समझता है उसकी यही दशा होती है।

सिद्धि

(एक ब्राह्मण और एक मनुष्य जिसको जल पर चलने की सिद्धि थी)

एक मनुष्य ने चौदह वर्ष वन में तपस्या करके जल पर चलने की सिद्धि प्राप्त की थी। इस सिद्धि को पाकर

वह बहुत प्रसन्न हुआ और अपने गुरूजी के पास जा कर कहने लगा 'गुरुजी, मुझको जल पर चलने की सिद्धि मिल गई है।' गुरुजी ने कहा 'बेटा! क्या तेरी चौदह वर्ष की तपस्या का यही फल है। यदि विचार कर देखा जाय तो तुझको केवल एक पैसा मिला है। क्योंकि जो वस्तु तुझको १४ वर्ष तपस्या करने से मिली वही वस्तु मल्लाह को एक पैसा उतराई का देने से सब लोगों को प्राप्त होती है।' तात्पर्य यह है कि तपस्या केवल ईश्वर से मिलने के लिए करना उचित है। तपस्वी को सिद्धियों के फेर में कभी नहीं आना चाहिए।

मलिन वासना।

(धींवर)

एक धींवरी मछली बेच कर बाज़ार से घर को आती थी, रास्ते में साँझ हो गई। रात में वह एक माली के घर रही। माली ने जहाँ तक हो सकता था उसकी ख़ातिर की परन्तु धींवरी को नींद न आई। आख़िर उस को नींद न आने का कारण यह मालूम हुआ कि वहाँ पर फूलों की एक टोकरी रक्खी है और फूलों की सुगन्ध से उसे नींद नहीं आती है। यह देख उसने मछली की टोकरी पर पानी छिड़का और उस पानी को नाक पर लगाया जिससे मछली की दुर्गन्ध बनी रहे। इससे

उसको तुरन्त नींद आ गई। इसी प्रकार संसारी लोगों का मन होता है। जब तक उनको मलिन अवस्था नहीं मिलती, तब तक चैन नहीं मिलता।

भली बात की नकल का फल

(चोर)

एक चोर आधी रात के समय एक राजभवन में चोरी करने गया और उसने राजा को अपनी रानी से यह कहते सुना कि मैं अपनी बेटी का व्याह किसी साधु के साथ कर दूँगा। चोर यह सुन कर सोचने लगा कि यह मौक़ा बहुत अच्छा है, अगर मेरा भी वेष कल से साधुओं का-सा हो जाय और मैं उन लोगों के साथ रहूँ तो शायद राजा अपनी लड़की को मुझसे ही व्याह दे। दूसरे दिन सबेरे उठ कर उसने यही किया। इतने में राजा के नौकर साधुओं के पास आये और बोले कि राजा अपनी लड़की का विवाह किसी साधु के साथ करना चाहता है। अगर आप लोगों में कोई राज़ी हो तो हम राजा से कहें। साधुओं में से विवाह करने के लिये कोई राज़ी न हुआ। आख़िर वे लोग इस बात को कहने के लिये उस चोर के पास गए, जो साधु के वेष में था। चोर चुपचाप रहा, कुछ न बोला। राजा के नौकरों ने राजा के पास जा कर कहा कि कोई साधु विवाह करने में राज़ी नहीं है। परन्तु

एक जवान साधु है शायद वह आपके कहने में आ जावे और आपकी लड़की से विवाह करले। राजा लाचार होकर उसके पास गया और उससे कहने लगा—'आप मेरी लड़की को ब्याह लें तो बड़ी कृपा हो।' राजा को अपने पास आते देख उस चोर का मन बदल गया।

चोर सोचने लगा कि मैं झूठा साधु हूँ तथापि राजा केवल मेरे वेष को देख कर मेरा इतना आदर करता है और मुझसे प्रार्थना करता है। अगर मैं सच्चा साधु हो जाऊँ तो न जाने आगे मेरा कितना भला होगा। इस विचार का यह फल हुआ कि झूँठे बहाने से विवाह करने के बदले वह अपनी वृत्तियों को सुधारने लगा और सच्चा साधु होने की चेष्टा करने लगा। उसने अपना विवाह कभी न किया और अन्त में वह कुछ समय के पीछे उत्तम कोटि का साधु हो गया। भली बातों की नकल करने का भी कभी-कभी बहुत अच्छा फल होता है।

लालच

(नाई और सात घड़े)

एक नाई एक पेड़ के नीचे हो कर कहीं को जाता था। इतने में आवाज़ आई कि तू सोने से भरे हुए

सात घड़े लेगा ? नाई ने चारों तरफ़ देखा कोई न दिखाई दिया। सात सोने के घड़ों का नाम सुन कर उसके मन में लालच उपजा और वह ज़ोर से बोला 'हाँ सोने के सात घड़े मैं लूँगा।' इतने में दूसरी आवाज़ आई 'फिर तू अपने घर जा, मैंने सात सोने के घड़े तेरे घर पहुँचा दिये हैं।' नाई यह देखने को कि यह बात कहाँ तक सच है दौड़ता हुआ अपने घर पहुँचा और उसे यह देख कर अचरज हुआ कि वे सात घड़े सामने रक्खे हैं। उसने जब उनको खोल कर देखा तो ६ घड़े सोने से भरे थे और सातवां घड़ा आधा भरा हुआ था। इस घड़े को देख नाई के मन में यह चिन्ता उपजी कि सातवाँ घड़ा जब तक न भरेगा तब तक मुझे पूरा सुख न मिलेगा। इसलिये उसने सब सोने और चाँदी के ज़ेवर को बेच कर अशर्फियाँ मोल लीं और उनको उस घड़े में डाला परन्तु घड़ा नहीं भरा। फिर उसने सब ख़र्च घटा दिए और भूखा रह कर रुपया इकट्ठा किया। उस रुपये की अशर्फियाँ मोल लेकर उस अधूरे घड़े में डालीं। वह घड़ा फिर भी न भरा। नाई राजा की नौकरी करता था और राजा उससे खुश था। उसने राजा से विनती कर के कहा कि मेरा ख़र्च नहीं चलता। राजा ने नाई की तनख़्वाह दूनी करदी। नाई ने फिर रुपया इकट्ठा कर के

अशर्फियाँ लीं और घड़े में डालीं। घड़ा फिर भी न भरा और ज्यों का त्यों रहा। इसके पश्चात् नाई घर घर भीख माँगने लगा और जो कुछ उसको काम करने से तथा भीख माँगने से मिलता था उसकी अशर्फी खरीद कर घड़े में डालता जाता था। परन्तु घड़ा फिर भी वैसा का वैसा ही रहता था। एक दिन राजा ने उस नाई से कहा तू इतना दुःखी और उदास क्यों हो गया है। जब तक तेरी तनख्वाह आधी थी, तू खुश और तन्दुरुस्त रहता था परन्तु जब से तेरी तनख्वाह बढ़ाई गई है तू दिन-दिन दुःखी होता जाता है, कहीं तुझे 'सात घड़े' तो नहीं मिल गए? नाई इस बात को सुन कर चकित हो गया और बोला 'महाराज! आपसे किसने कहा?' राजा बोला 'तू नहीं जानता है? ये लक्षण उसी के होते हैं जिसको यक्ष अपने सात घड़े देता है। उस यक्ष ने मुझ से भी उन सात घड़ों को लेने के लिये कहा था, मैंने उससे यही पूछा कि घड़े खर्च करने के लिये हैं या जमा करने के लिये? ज्योंही यक्ष ने यह सुना, वह कुछ न बोला और चुपचाप भाग गया। तू यह नहीं जानता कि कोई उस धन को खर्च नहीं कर सकता। उससे केवल और धन को समेटने की इच्छा बढ़ती है। अभी जा और उन घड़ों को फेर दे।

लालच बुरी बला है। जिन्होंने रुपया कमा कर सद्व्यय नहीं सीखा उनकी यही दशा होती है। इससे तो रुपए का न होना अच्छा है। व्यर्थ चिन्ता तो नहीं रहती।

संसार में किस ढङ्ग से रहना चाहिए ?

(सांप और महात्मा)

एक साँप बिल में रहता था। कोई उस बिल की तरफ़ मारे डर के नहीं जाता था, क्योंकि जो कोई उधर जाता उसको वह काट लेता और मार डालता था। एक दिन एक महात्मा उधर से निकला। उसे देख कर साँप काट खाने को दौड़ा। साँप को देख महात्मा ने मृदु वचन से कहा 'क्यों मित्र ! तू मुझे काटना चाहता है ? साँप महात्मा की वाणी को सुन कर अपने सब क्रोध को भूल गया। महात्मा ने कहा ख़बरदार ! आज से किसीको न काटना। सांप ने कहा बहुत अच्छा, न काटूँगा। यह कह कर महात्मा चला गया और साँप भी अपने बिल में घुस गया। दूसरे दिन से साँप ने काटना छोड़ दिया। उसी दिन से उस पर तबाही आई। कोई उस पर ईंट पत्थर फेंकने लगे, कोई लकड़ी से उसे मारने लगे और कोई दुम खींच कर घसीटने लगे। संयोग से फिर वह महात्मा साँप के बिल के पास से निकला और उसने देखा कि साँप की बहुत दुर्गति होगई है और

उसके शरीर में जगह जगह चोटें लगी हैं। महात्मा को साँप की दशा देख कर दया आई और उसने साँप से इस दुर्दशा का कारण पूछा। साँप ने कहा महाराज ! जब से मैंने आपका कहा माना तब ही से मेरी यह दशा हो गई है। अब मैं किसी को दुःख नहीं देता, परन्तु मुझ को सब दुःख देते हैं। महात्मा हँस कर बोला कि मैंने तो केवल यही कहा था कि किसी को काटना नहीं। यह तो मैंने नहीं कहा था कि किसी को डराना भी नहीं। अगर तू अपनी फुंकार से अपने छेड़नेवालों को डराया करता तो तुझे कोई न सताता। इसी प्रकार संसारी को इस तरह रहना चाहिए कि लोग उससे डरते रहें और उसका निरादर भी न करें। किसी को दुःख भी न देना चाहिये परन्तु ऐसे भी न रहना चाहिए जिससे और लोग नाहक उसको सतावें।

ध्यान

(अवधूत और सारस)

एक अवधूत ने देखा कि एक सारस धीरे-धीरे मछली पकड़ने जाता है और उसके पीछे शिकारी कमान पर तीर चढ़ा कर सारस को मारने को खड़ा है। परन्तु सारस का ध्यान मछली पर ऐसा लगा है कि शिकारी की तरफ वह देखता तक नहीं। अवधूत यह देख कर

बोला कि जिस समय मैं ईश्वर का ध्यान करने बैठूँ, तब मेरा भी ऐसा ही ध्यान लगे कि मैं पीछे कुछ न देखूँ।

पाठको! हमने आप के लाभ के लिये श्री रामकृष्णजी महाराज के कुछ दृष्टान्तों को उद्धृत किया है। इन सरल दृष्टान्तों से साधारण समझवाले मनुष्य भी लाभ उठा सकते हैं। जिस तत्त्व को पण्डित लोग वर्षों में नहीं समझा सकते वह श्री परमहंसजी के एक दृष्टान्त से समझ में आ सकता है। हम अपने प्रिय पाठकों को सलाह देंगे कि वे श्री रामकृष्णजी के उपदेशों पर ध्यान दें, उनका बार-बार पाठ करें। बस, आध्यात्मिक विद्या की इन उपदेशों से आसान कुञ्जी और कुछ नहीं हो सकती। यद्यपि परमहंसजी का पञ्चभौतिक देह आज इस संसार में नहीं है परन्तु उनके उपदेशों का प्रभाव वैसा ही है जैसा कि उनके श्रीमुख से निकलते समय था।

देहावसान

भक्त लोग दिन-रात परमहंसजी को उनके उपदेशामृत सुनने के लिये घेरे ही रहते थे। एक दिन परमहंस ने अपने कुछ भक्तों से कहा देखो, मैं माँ से कहा करता था कि "अब मैं लोगों के साथ बातचीत नहीं कर सकता। (कुछ शिष्यों के नाम लेकर) अब तू इन लोगों को शक्ति दे। यह लोग उपदेश दे कर संसार का भला करेंगे?"

परमहंसजी की यह बातें सुन कर सब भक्त लोग अचरज करने लगे परन्तु किसी ने इसका ठीक मतलब नहीं समझा। इस घटना के कुछ समय पश्चात् परमहंसजी महाराज के गले में कुछ पीड़ा होने लगी। थोड़े दिन तक तो सब लोग यही समझते रहे कि साधारण पीड़ा है, मिट जायगी। किसी ने इस ओर विशेष ध्यान नहीं दिया। पर धीरे-धीरे पीड़ा बढ़ती गई। अन्त में भोजन तक निगलना मुश्किल हो गया। थोड़े दिनों में गण्ड-माला के लक्षण दिखाई देने लगे। वैद्य और डाक्टरों ने गण्ड-माला निश्चय करके चिकित्सा प्रारम्भ कर दी। परन्तु किसी भी औषध का कुछ फल न होता था। श्री रामकृष्णजी का शरीर भी रुग्णावस्था में बहुत कृश हो गया था परन्तु उनके अमृतमय उपदेश तथा भगवान् का कीर्तन पहले की भाँति ही होता रहा। जब सब लोगों ने देखा कि औषधियों का कुछ असर नहीं होता और रोग दिन-दिन बढ़ता ही जा रहा है तब उन्होंने श्री परमहंसजी को कलकत्ता ले जाकर एक अंग्रेज़ डाक्टर को दिखाना निश्चय किया। योगिराज श्री रामकृष्ण यह तो भली भाँति जानते ही थे कि अब यह शरीर बदलना होगा, परन्तु अपने भक्तों के प्रेम से उन्होंने कलकत्ता आने से इन्कार नहीं किया। कलकत्ता

पहुँचने पर वहाँ के सब डॉक्टर और वैद्य लोग श्री परमहंस जी को देखने आने लगे। इनकी अस्वस्थता का समाचार सुन कर चिकित्सा में प्रवीण डॉक्टर लोग बिना बुलाये ही आ उपस्थित होते थे। सबने अपनी-अपनी बुद्धि का उत्कर्ष दिखलाया। परन्तु किसी की बुद्धि काम में नहीं आई। परमहंसजी की व्याधि में कुछ भी शान्ति न हुई किन्तु दिन-दिन रोग भयानक रूप धारण करता गया। परन्तु, इस अवस्था में भी रामकृष्णजी ने अपने उपदेशों और हरि-चर्चा को बन्द नहीं किया। लोगों को यह देख कर बड़ा विस्मय था। अस्तु, इसी प्रकार तीन मास बीत गए परन्तु कलकत्ते आने का कुछ फल न हुआ। इतने पीड़ित होने पर भी परमहंसजी के मुख पर मधुर हास्य बना ही रहता था। जब लोग इनके रोग की चिन्ता करते थे तो ये कहा करते थे, "देह जले, दुःख जाने, मन! तुम अपने आनन्द में मग्न रहो।" परमहंसजी ने काल की कुछ भी परवाह न की। कण्ठ में पीड़ा विशेष होने कारण परमहंस देव न कुछ खा सकते न कुछ पी ही सकते थे। रोग बढ़ने पर दूध भी पीना इन के लिये कठिन हो गया था। बस, अब श्री परमहंसजी की हड्डियाँ ही हड्डियाँ शेष रह गई थी। अन्तमें इन्होंने अपने एक शिष्य से पञ्चाङ्ग देखने के लिये कहा। जब उस शिष्य

ने कहा कि आज श्रावण की पूर्णिमा है और कल भाद्र-पद की प्रतिपदा, तब परमहंसजी समाधिस्थ हो गए। इस प्रकार प्रकाशमयी पूर्णिमा बीती। प्रतिपदा को प्रातः काल पीड़ा ने भयङ्कर-रूप धारण किया और थोड़ी देर में ही श्री रामकृष्णजी महाराज अपनी मनुष्य लीला को समाप्त करके पञ्चतत्त्वों में मिल गए।

रामकृष्णजी के देहावसान का दुःखद समाचार चारों ओर फैल गया। दर्शकों की भीड़ लग गई। भक्त लोगों ने इनके शव को बड़े समारोह से श्री गङ्गाजी के किनारे पहुँचाया और वहाँ उनके भौतिक शरीर का यथाविधि दाह-कर्म हुआ।

यद्यपि आज हम श्री रामकृष्ण के स्थूल शरीर का दर्शन नहीं कर सकते परन्तु उनके यश और प्रताप की सुगन्धि भारत में सदा रहेगी।

❀ इति ❀